कम-स

निष्कर्षों को अपने है। ये घटन से रंगस्थल
चाहता है। एकता व यदि कोई
पास आवश्यक हैं। का प्रयत्न
नहीं क्यों न हो, में असफलता
वि चरित्र लेखक अ यशपाल .... को नहीं देखा,
तालुकेद जीवन -श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव ों का अध्ययन
अंकन -श्री सुदर्शन न की पृष्ठभूमि
प -श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ... तिहासिक कहानी
लिख नष, घर की बेटी—श्री प्रेमचन्द .... उस अतीत युग की
संस्कृति का, जिसका चित्रण करना उसे अभीष्ट है, पूरा-अध्ययन करे। यहाँ यह संकेत कर देना उचित होगा कि कहानी के सीमित पट पर देश-काल का चित्रण भी विस्तार और विवरण दोनों की दृष्टियों से सीमित ही होना चाहिए।

शैली के दो भेद हैं: भाषाशैली तथा रचना-शैली। भाषा-शैली प्रत्येक लेखक की अपनी होती है। अधिक-से-अधिक लोगों के पास पहुँच सकने की दृष्टि से सरल भाषा का व्यवहार कहानी के लिये अधिक समीचीन समझा जाता है। प्रेमचन्द की भाषा कहानी के लिये

शैली

आदर्श मानी जा सकती है। गंभीर-से-गंभीर विचारों का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावों और भाव-परिवर्तनों का तथा बाह्य प्रकृति के मनोरम दृश्यों का अंकन प्रेमचन्द ने अपनी सीधी-सादी भाषा में अद्भुत सफलता के साथ किया है। कथोपकथन को अधिक सजीव एवं स्वाभाविक बनाने के लिये उन्होंने पात्रों के धर्म, प्रान्त, वर्ग, शिक्षा आदि के अनुसार भी उनकी भाषा को बदला है।

रचना की दृष्टि से कहानी की पाँच शैलियाँ हैं: (१) ऐतिहासिक शैली, (२) आत्मकथा शैली, (३) कथोपकथन-प्रधान शैली, (४)

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

• पत्र शैली
तटस्थ व्य
अस्तित्व क
समाज के बी
सोचते हैं उन
लिखने की स
कथा शैली में
रूप में कहानी क   ए
यह शैली उपयुक्त   का
• भी थोड़ा-बहुत उपयोग किया है।   कथोजना यों तो प्रायः
हर कहानी में कुछ-न-कुछ की जाती है। पर यदि किसी कहानी में
चरित्र-चित्रण और कथानक का विकास प्रमुख रूप से कथोपकथन के
ही द्वारा दिखाया गया हो तो उसे कथोपकथन-प्रधान शैली की कहानी
कहा जाएगा। कभी-कभी कहानी लेखक केवल अपने पात्रों के कुछ पत्रों
को उद्धृत कर देता है। उन पत्रों में से ही पाठक कथानक के सूत्र को
ग्रहण करता हुआ पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को ढूँढ लेता है।
इस प्रकार की कहानी पत्र शैली में लिखी गई कही जाती है। इसी
प्रकार डायरी शैलीकी कहानीमें कहानी के किसी पात्रकी डायरी में से
कुछ पृष्ठ उद्धृत कर दिये जाते हैं। अन्तिम दोनों शैलियाँ कहानी के
लिए बहुत स्वाभाविकनहीं हैं। किन्तु ऐतिहासिक शैली की कहानी के
बीच में इनका सीमित प्रयोग स्वाभाविक और उपयोगी हो सकता है।

कहानी-लेखक केवल कहानी-लेखक ही नहीं होता, चिन्तक भी होता है। वह जीवन को--जीवन की समस्याओं को—केवल देखकर ही संतुष्ट नहीं हो जाता, उन पर मनन भी करता है। कहानियों में जीवन के सजीव चित्रण द्वारा वह जीवन के संबंध में अपने अनुभूति-

उद्देश्य

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

निष्कर्षों को अपने ... क्रम-से पहुँचा कर उनसे उन्हें प्रभावित ... चाहता है। ... है। ये घटन ... एवं प्रभावपूर्ण होना आवश्यक ... एकता ... नहीं ... हैं।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पत्र शैली
तटस्थ
अस्ति
समा
सो
ि

ए
ों का
ाय:

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

निष्कर्षों को अपने ... कम-से ... पहुँचा कर उनसे उन्हें प्रभावित ... चाहता है। ... है। ये घटन ... एवं प्रभावपूर्ण होना आवश्यक ... एकता ... नहीं ... हैं।

...वना

वि ... चरित्र ... ओं और कार्यों की एक श्रृंखला जिसे एक ... यों न हो, क... वा व्यक्तियों से कहे, अपने कथित रूप में उतनी ... लेखक अप... ही पुरानी है जितनी मनुष्य जाति। लिखित ... जीवन ... अंकन ...

...ा आरंभ

रूप में भी हम उसका अस्तित्व संसार के प्राचीनतम साहित्य तक में पाते हैं। वेद, ...नषद्, पुराण, काव्य—कोई भी साहित्यांग ऐसा नहीं है जहाँ हम ...हानी को किसी-न-किसी रूप में न देखते हों। पर आधुनिक कहानी का आरंभ १९०० ई० से पहले नहीं हुआ। आश्चर्य की बात तो यह है कि साठ-सत्तर वर्ष के अल्प वय में ही कहानी आधुनिक साहित्य का सर्वाधिक लोकप्रिय अंग बन गई है।

प्राचीन और आधुनिक कहानी में भेद

आधुनिक कहानी प्राचीन कहानी से कई बातों में भिन्न है। प्राचीन कहानी असाधारण घटनाओं एवं आश्चर्यजनक पर-प्राकृत वृत्तांतों से पूर्ण रहा करती थी। पशु-पक्षियों का बोलना परियों और राक्षसों के अमानुष कार्य तथा अन्य अनेक जादूभरी असंभाव्य बातें भारत के ही नहीं, समस्त संसार के प्राचीन कथा-साहित्य में प्रचुरता से प्राप्त होती हैं। इसके विपरीत आधुनिक कहानी में केवल संभावित घटनाओं का ही चित्रण किया जाता है। आज का पाठक किसी ऐसी बात पर, जिसका अस्तित्व वास्तविक जगत् में संभव न हो सकता हो, विश्वास करने के लिये तैयार नहीं है। प्राचीन कहानी में आकस्मिक घटनाओं का बाहुल्य रहा करता था, ... आधुनिक कहानी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

... के पात्र
के ... करते थे, किन्तु आधुनि...
तथा निम्न-वर्ग से चुने जाते हैं। प्र...
प्रकृति का चित्रण तो मिल सकता है, ...
के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का, जो आधुनि...
विशेषता है, उसमें नितांत अभाव है। प्राचीन क...
श्रोता की अपेक्षा रखती थी, किन्तु आधुनिक कहानी ले...
से निःसृत होकर पाठ्यरूप में हमारे सामने आती है। ...ए
...का

कहानी के तत्त्व

कहानी में शृंखलाबद्ध घटनाओं एवं कार्यों का चित्रण कि... जाता है। इन घटनाओं एवं कार्यों से कुछ व्यक्तियों का संबंध होता है। ये व्यक्ति आपस में कुछ बातचीत करते हैं। इन व्यक्तियों के व्यवहार और बातचीत से, तथा लेखक द्वारा किये गये इनके चित्रण से इनके हर्ष, शोक, प्रेम, ईर्ष्या आदि मनोभावों का परिचय हमें प्राप्त होता है। कहानी का निर्माण किसी विशेष देश तथा काल की पृष्ठभूमि पर किया जाता है। कहानी कहने की कोई-न-कोई शैली होती है। कहानी लिखने का कुछ-न-कुछ उद्देश्य होता है; कहानी के द्वारा लेखक जीवन के प्रति अपने दृष्टि-कोण की भी अभिव्यक्ति करता है। इस प्रकार कहानी के सात तत्त्व होते हैं (१) कथानक, (२) पात्र अथवा चरित्र-चित्रण, (३) कथोपकथन (४) रस अथवा भाव-चित्रण, (५) देश-काल, (६) शैली तथा (७) उद्देश्य अथवा लेखक का जीवन के प्रति दृष्टिकोण। ये तत्त्व उपन्यास एवं नाटक में भी पाये जाते हैं। यहाँ हम कहानी के दृष्टिकोण से इनपर विचार करेंगे।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

निष्कर्षों को ... है। ये घटनाएँ और ... उनसे उन्हें प्रभावित ... चाहता है ... एकता से एक दूसरे से भली भाँति जुड़े रहते ... आवश्यक ... हैं। कहानी की मूल संवेदना से असंबद्ध नहीं ... किसी बात के लिए, अपने आप में वह कितनी ... चक्तियों न हो, कहानी के कथानक में स्थान नहीं है। एक कहानी ... लेखक अपने पाठकों पर केवल एक ही प्रभाव डालना चाहता ... जीवन की विभिन्न परिस्थितियों तथा बहुमुखी समस्याओं का अंकन कहानी के पट पर संभव नहीं है।

कहानी को और कुछ भी होने से पहले कहानी होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि कहानी में कथानक का विन्यास इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उसे पढ़ते समय पाठक की उत्सुकता अथवा लगन अन्त तक बनी रहे। यदि कहानी पढ़ने में भी प्रयत्न करना पड़े तो उस रचना को कहानी कहने में संकोच होना चाहिए। साकांक्षता का निर्वाह कहानी की पहली शर्त है। इसके अतिरिक्त कहानी की समस्त घटनाएँ शृंखलाबद्ध होनी चाहिए तथा उनमें अन्तर्विरोधों का सर्वथा अभाव होना चाहिए। एक दूसरे से असंबद्ध घटनाओं के समूह को कहानी नहीं कहा जा सकता। किसी घटना अथवा प्रसंग के संबंध में किसी भी ऐसी बात का कहना, जो पहले कही हुई बातों से पूरा मेल न खाती हो, आपत्तिजनक होगा।

कथानक के लिए ऊपर जिन दो बातों को आवश्यक बताया गया है उनके न होने से कहानी साधारण-से-साधारण पाठक को भी दोषपूर्ण प्रतीत होगी। इनके अतिरिक्त आधुनिक कहानी के कथानक में दो और बातों की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। पहली बात, है अनुभूति का दृढ़ आधार। लेखक अपनी कहानी में जो कुछ भी कहता है यदि उसने स्वयं उसका अनुभव नहीं किया, तो वह कभी भी सफल

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

कृत जीवन

पत्र शैली ... कत करने के लिए चुनता

जानकारी होनी चाहिए। प्रत्येक लेखक का कर्त्तव्य

सीमाओं को समझे, और किसी अप्रामाणिक बात को ज़

रचना में रखने का हास्यास्पद प्रयत्न न करे। इसके साथ

एवं प्रसंगों का स्वाभाविक विकास दिखाना भी आवश्यक

की घटनाएँ पहले हो चुकनेवाली घटनाओं की स्वाभाविक

प्रतीत हों। आकस्मिक अथवा संयोगात्मक घटनाओं की योजना

से-कम होनी चाहिए। कथानक के प्रवाह को अभीष्ट परिणाम की ओर स्वाभाविक रूप से मोड़ने में जब लेखक अपने को असमर्थ पाता है, प्रायः तभी वह किसी-न-किसी संयोगात्मक घटना की कल्पना करता है।

पात्र

कहानी की संकुचित सीमा में किसी पात्र के चरित्र का जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के बीच में से विकास दिखा सकना संभव नहीं है, और न पात्र-विशेष के समग्र व्यक्तित्व का अंकन ही संभव हो सकता है। कहानी में तो लेखक पात्र-विशेष के चरित्र के केवल किसी एक प्रभावशाली पक्ष का कुछ मार्मिक घटनाओं अथवा परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में उद्घाटन करता है।

चरित्र-चित्रण की सफलता इस बात में है कि कहानी के पात्र कठपुतली से दिखाई न देकर जीवित व्यक्तियों के रूप में हमारे सामने आयें; उनका कार्य-व्यवहार तथा सोचना-विचारना लेखक की मनमानी इच्छा के अनुसार न होकर उनकी अपनी इच्छा के अनुसार तथा उनके व्यक्तित्व और परिस्थितियों के अनुरूप हो। संक्षेप में चरित्र-चित्रण करते समय मनोविज्ञान-सम्मत स्वाभाविकता का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है। कभी-कभी किसी पात्र के चरित्र में मौलिक परिवर्त्तन दिखाना अभीष्ट होता है। इसके लिए भी मनोविज्ञान की दृष्टि से इतनी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

निष्कर्षों को अपने ... करने पहुँचा कर उनसे उन्हें प्रभावित
...ा चाहता है । ...न हो । ...एवं प्रभावपूर्ण होना
आवश्यक ... की दो प्रमुख शैलियाँ हैं : विश्लेषण... तथा
नहीं ... लेखक अपनी ओर से किसी चरित्र के संबंध में कुछ
चरित्र... वह पहली शैली का प्रयोग करता है, और जब स्वयं
...बातचीत और कार्य से हमें उनके बारे में पता लगता है, तब
...री शैली का उपयोग करता है । नाटक में तो केवल दूसरी
...का ही चरित्र-चित्रण संभव है । कहानी में भी पहली शैली
का प्रयोग सीमित ही होना चाहिए ।

कथोपकथन

कथोपकथन के द्वारा दो उद्देश्यों की सिद्धि होती है : घटना-क्रम अथवा कार्य-व्यापार का आगे बढ़ना तथा पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं का उद्घाटन । इनमें से कम-से-कम एक उद्देश्य की सिद्धि प्रत्येक पात्र के द्वारा कहे गए प्रत्येक वाक्य से होनी चाहिए । यदि किसी वाक्य से इनमें से एक भी उद्देश्य की सिद्धि नहीं होती तो उसे बिना किसी झिझक के कहानी के लिए सर्वथा अनावश्यक तथा निरर्थक कहा जा सकता है ।

स्वाभाविकता और नाटकीयता कथोपकथन के दो विशिष्ट गुण हैं । किसी पात्र के मुख में ऐसी बात न रखी जानी चाहिए, जो उसके बौद्धिक विकास, सामाजिक स्तर एवं तात्कालिक परिस्थिति का ध्यान रखते हुए स्वाभाविक प्रतीत न हो । पर केवल स्वाभाविकता ही पर्याप्त नहीं है, उसके साथ नाटकीयता भी होनी चाहिए । नाटकीयता का अर्थ है संक्षिप्तता और रोचकता से युक्त प्रभावात्मकता । दो असंस्कृत लड़ते हुए व्यक्तियों की घंटे भर की गाली-गलौज-पूर्ण बातचीत का, दो दार्शनिकों के कभी समाप्त न हो सकनेवाले वाद-विवाद का, अथवा किसी समाज-सुधारक के लम्बे चौड़े व्याख्यान का यथार्थ अंकन

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पत्र शैली ... ...ाविकता के बीच में
प्रभा... ...रोचक अंशों को चुने जिनसे परिस्थि...
चरित्रगत विशेषताओं का परिचय मिल सके। समस्...
विवाद और उपदेश-पूर्ण भाषण अपने स्वाभाविक वि...
कहानी का अंग नहीं बन सकते।

भारतीय दृष्टिकोण से रस साहित्य का एक प्रधान तत्...
अतएव कहानी के संबंध में भी हम उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते।

रस अथवा भाव चित्रण

कहानी में पात्रों के भावों का अंकन नाटक और काव्य में पात्रों के भावों के अंकन से किसी प्रकार भी कम महत्त्व-पूर्ण नहीं है। कहानी के पात्र भी पाठकों के मन में अपने प्रति सहानुभूति उत्पन्न करते हुए उन्हें अपने शोक, हर्ष, प्रेम, भय, उत्कंठा, आशंका आदि भावों से पूर्णतया प्रभावित करते हैं। लेखक को चाहिए कि वह पात्रों के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावों एवं भाव-परिवर्तनों का चित्रण परिस्थिति और वातावरण का ध्यान रखते हुए एक कुशल चित्रकार की तूलिका से करे। तभी उसकी कला सजीव होगी। तभी उसकी रचना में प्राणों का संचार होगा।

कहानी की घटनाएँ और पात्र देश-काल के रंगमंच पर हमारे सामने आते हैं। कहानी को यथार्थ का आभास देने के लिए देश

देश-काल

और काल का सजीव चित्रण आवश्यक है। देश-काल के अन्तर्गत देश-विशेष और काल-विशेष से संबंधित बाह्य दृश्य ही नहीं आते अपितु उस स्थान और समय से संबंधित लोक-व्यवहार तथा शिष्टाचार के नियम भी आ जाते हैं। जिस वर्ग अथवा समाज का चित्रण करना लेखक को अभीष्ट हो, उसके जीवन की पूरी जानकारी उसे होनी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

निष्कर्षों को अपने पाठकों तक पहुँचा कर उनसे उन्हें प्रभावित ा चाहता है। आधुनिक कहानी का सोद्देश्य एवं प्रभावपूर्ण होना आवश्यक हो गया है कि इसके बिना किसी कहानी को श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। नाम-मात्र का कथानक लेकर तथा चरित्र-चित्रण के केवल किसी सुंदर भाव की अभिव्यक्ति करते ाठकों पर पड़नेवाले उसके प्रभाव के सहारे एक अति सुंदर ी लिखी जा सकती हैं; किंतु एक उद्देश्य-हीन एवं प्रभाव-रहित कहानी अन्य तत्त्वों के भली भाँति संयोजित होने पर भी सफल रचना नहीं कही जा सकती।

इस प्रकार जीवन के प्रति अपना दृष्टिकोण अपनी रचना में अभिव्यक्त करना लेखक के लिए आवश्यक तो है, किन्तु यह कार्य उसे बड़ी बारीकी और सावधानी से करना चाहिए। पाठक तक उसका दृष्टिकोण कहानी से छनकर पहुँचना चाहिए, सीधे अथवा प्रत्यक्ष रूप में नहीं। जो लेखक इस बात का ध्यान नहीं रख सकते वे कलाकार के ऊँचे सिंहासन पर बैठने के लिए अयोग्य सिद्ध होकर प्रचारक मात्र रह जाते हैं।

कहानी के जिन सात तत्त्वों पर हमने ऊपर विचार किया है उनमें से प्रत्येक की प्रत्येक कहानी में प्रायः समान प्रधानता नहीं रहती।

कहानियों का वर्गीकरण

तत्त्व-विशेष की प्रधानता के आधार पर कहानी के तीन प्रमुख भेद किए गए हैं: घटना प्रधान, चरित्र-प्रधान तथा भाव-प्रधान। कथोपकथन, देश-काल तथा शैली को लेकर इस प्रकार के भेद नहीं माने गए। कारण यह है कि ये तत्त्व अपने आप में लक्ष्य न होकर शेष तत्त्वों के विकास में सहायक मात्र होकर आते हैं। सातवें तत्त्व—उद्देश्य—को जो प्रत्येक कहानी में

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

अनिवार्य रूप से रहना ही चाहिए। अतएव उद्देश्य-प्रधान वर्ग अलग से मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। कभी-कभी उप तीनों प्रमुख तत्व, अथवा उनमें से कोई दो भी, समान रूप से प्र हो सकते हैं।

आधुनिक कहानी का सबसे सरल और आरंभिक रूप घ प्रधान कहानियों में ही मिलता है। घटनाओं का एक मनोरंजक से विकास एवं घात-प्रतिघात दिखाना ही वर्ग की कहानियों का लक्ष्य होता है। घटना-श्रृंखला में इच्छित मोड़ दिखाने के लिए प्रायः संयोगात्मक अथवा आकस्मिक प्रसंगों की योजना की जाती है। पात्रों की कल्पना घटनाओं के आग्रह के अनुरूप कर ली जाती है, तथा उनके व्यक्तित्व का स्वतंत्र विकास दिखाने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता। इस वर्ग की कहानियाँ कला की दृष्टि से साधारण कोटि की होते हुए भी रोचकता की दृष्टि से उत्कृष्ट होती हैं।

घटना-प्रधान कहानी

हम पहले कह चुके हैं कि मानव की अन्तर्वृत्तियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आधुनिक कहानी की एक प्रमुख विशेषता है। इसके लिए सर्वाधिक अवसर चरित्र-प्रधान कहानियों में मिलता है। लेखक पहले किसी चरित्र की कल्पना करता है; फिर उस चरित्र की जिन विशेषताओं को दिखाना उसे अभीष्ट होता है उनके उद्घाटन के लिए वह उपयुक्त घटनाओं की योजना कर लेता है। इस प्रकार एक कथानक तो तैयार हो जाता है, किंतु लेखक का मूल लक्ष्य किसी प्रभावशाली चरित्र की सृष्टि करना ही रहता है। इस वर्ग की कहानी में लेखक अपनी इच्छा के अनुसार किसी साधारण अथवा असाधारण पात्र को लेकर उसके चरित्र के किसी एक पक्ष का विकास मात्र अंकित कर

चरित्र-प्रधान कहानी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

है, अथवा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपयुक्त एवं सशक्त परिस्थिति
र्माण करके उसमें कोई बड़ा परिवर्तन भी दिखा सकता है।

धुनिक कहानी कला का चरम विकास भाव-प्रधान कहानियों
है। इस वर्ग की कहानियों का क्षेत्र भी अत्यंत विस्तृत है।
मकता की दृष्टि से भाव-प्रधान कहानी ही सबसे अधिक प्रखर
होती है। भाव-प्रधान कहानी में कथानक और
चरित्र-चित्रण का महत्व बहुत कम हो जाता
है। कोई एक भाव अथवा तथ्य सारी कहानी
में परिव्याप्त रहता है, और उसी की सशक्त अभिव्यक्ति करना लेखक का मूल लक्ष्य होता है। इस प्रकार की कहानी के कलेवर का निर्माण अनेक प्रकार से किया जाता है। कभी करुण अथवा शृंगार रस से सिक्त कवित्व-पूर्ण कोमल भावना, कभी बीरत्व एवं दर्प से युक्त ओज-पूर्ण भाव, और कभी दो विरोधी भावों का मर्मभेदी संघर्ष कहानी के सर्वांग को अनुप्राणित करता हुआ पाठकों के मन और हृदय को पुलकित, रोमांचित अथवा आंदोलित करता है। कभी हास्य तथा व्यंग्य के माध्यम से, कभी पौराणिक कलेवर की सहायता से और कभी जीवन की कुछ सामान्य किन्तु अर्थगर्भित घटनाओं को यथातथ्य रूप में अंकित करके लेखक किसी महत्त्वपूर्ण सत्य की अभिव्यंजना करता है।

भ...प्रधान कहानी

विषय-सामग्री के आधार पर कहानी के अनेक भेद किए जा सकते हैं। उदाहरणार्थ--ऐतिहासिक, सामाजिक, हास्यपूर्ण, वैज्ञानिक, शिकार-संबंधी इत्यादि। किन्तु ये भेद सहज ही पहचाने जा सकते हैं। अतएव यहाँ इनका विशेष विवरण देने की आवश्यकता नहीं है।

अन्य भेद

कहानियों के तत्त्वों एवं तात्विक वर्गीकरण पर उपर्युक्त विवेचन,

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

जिसकी मौलिकता के संबंध में लेखक का कोई दावा नहीं है, विद्य
को कहानी का अध्ययन करने में सहायता पहुँचाने की दृष्टि
किया गया है।

प्रस्तुत संग्रह

प्रस्तुत संग्रह में सुरुचि का ध्यान रखते हुए हिन्दी के श्रेष्ठ
लेखकों की श्रेष्ठ कहानियाँ संकलित करने का, तथा वर्ग,
विषय-सामग्री की दृष्टियों से अधिक से
विविधता रखने का प्रयत्न किया ग ।
कहानियों का क्रम स्थिर करने में भी लेखकों
के आनुपातिक महत्त्व को आधार मानकर केवल इस बात का ध्यान
रखा गया है कि एक ही वर्ग अथवा विषय की कई कहानियाँ एक
साथ एकत्र हो जाएँ।

संकलन का कार्य करने में सबसे अधिक सहायता मुझे अपने
अभिन्न अग्रज डा० श्रीकृष्णलाल से मिली है। उनके अतिरिक्त
श्रद्धेय आचार्य हजारीप्रसाद जी द्विवेदी तथा सुहृद्वर प्रो० विजयशंकर
मल्ल से भी अनेक बहुमूल्य सुझाव प्राप्त हुए हैं। इन सब का मैं
हृदय से आभारी हूँ।

राकेशगुप्त

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पास

चार आने

[श्री यशपाल]

बिन्दौर के राजा साहब को खेलों से विशेष शौक न था। दूसरे तालुकेदारों और बड़े-बड़े आई० सी० एस० अफसरों की देखा-देखी वे अपने सेक्रेटरी के साथ जीमखाने का टेनिस टूर्नामेंट देखने गये थे। खेल की पैतरेबाजी से बड़े-बड़े अफसरों और रईस लोगों के चेहरे प्रसन्नता से चमकते देख, उन लोगों के मुख से निरन्तर वाहम्वाह सुन, राजा साहब को भी खेल से दिलचस्पी होने लगी।

सेक्रेटरी के कहने से राजा साहब ने इकहरे (Singles) खेल के मुख्य विजयी के लिए ट्राफी (विजयपात्र) की घोषणा कर दी। खेल समाप्त होने पर दूसरे बड़े आदमियों की तरह उन्होंने भी खिलाड़ियों से हाथ मिलाया। राजा साहब को सन्तोष अनुभव हुआ, एक उचित काम किया गया।

तीसरे दिन सेक्रेटरी साहब ने राजा साहब को अँग्रेजी का अखबर लाकर दिया। उसमें राजा साहब का चित्र था। चित्र में वे टेनिस के इकहरे खेल के विजयी खिलाड़ी मि० इर्शाद से हाथ मिला रहे थे। समाचार-पत्र के दो कालमों में राजा साहब की कद्रदानी और उदारता की प्रशंसा के साथ खिलाड़ी को विजयपात्र देने का समाचार छपा था। तब से टेनिस के खेल के प्रति राजा साहब के अनुराग की सीमा नहीं रही। टेनिस के खेल सम्बन्धी अंग्रेजी शब्द निरंतर उनकी जिह्वा पर रहते। टेनिस के बल्लों के वजन और गेंद बनाने वाली कम्पनियों के नाम उन्हें याद हो गये। किसी भी समाचार-पत्र में किसी भी स्थान पर टेनिस-मैच का समाचार प्रकाशित होने पर वे उसे पढ़ते या पढ़ाकर सुन लेते। सफर में आधा दर्जन बढ़िया टेनिस रैकेट उनके साथ रहते। मंसूरी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

में रहते समय खिलाड़ियों का धारीदार कोट अपने स्थूल, शिथिल शरीर पर कसे वे प्रत्येक सन्ध्या छः आदमियों से ढकेली जाती रिक्शा पर सवार हो, टेनिस के मैच में पहुँच जाते। वे टेनिस के संरक्षक समझे जाने लगे।

इर्शाद हुसैन के लिए जीवन की सबसे मूल्यवान और प्रिय वस्तु थी उसका टेनिस का रैकेट। ऊँची कीमत की वह रैकेट इर्शाद को कालेज टूर्नामिण्ट में विजयी होने के पुरस्कार में मिला था। इस रैकेट के बदौलत सम्मानित समाज के बड़े-से-बड़े महारथियों तक उसकी पहुँच हो पाती थी। बड़े-से-बड़े आई० सी० एल० अफसर, सर और तालुकेदार मुस्करा कर उससे हाथ मिलाते। यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं में कोई चमत्कार न दिखा सकने पर भी उसका आदर और महत्त्व था। उसके अपने घर में समृद्धि न होने पर भी समृद्ध लोग उसे आदर की दृष्टि से देखते। जस्टिस विकसन ने उससे हाथ मिलाया तो कलक्टर साहब ने भी शेक-हैण्ड किया। राजा साहब बिन्दौर ने उसे 'कार्लटन' होटल में चाय पीने के लिए निमन्त्रित किया तो बिल्लूर के नवाब साहब ने भी उसे 'रायल' में बुलाया।

टेनिस के जोर पर समाज में सम्मान पाकर भी इर्शाद हुसैन के जीवन की समस्या हल न हुई। वह घर में बड़ा लड़का था। घर के बोझ को सिर लिए बिना चारा न था। इर्शाद के पिता के समय प्रश्न था घर और खानदान की इज्जत की रक्षा का। नवाबों के समय के जीवन-साधन अब न रहे थे, परन्तु खानदान की इज्जत चली आती थी। इर्शाद के पिता, मियाँ शाहनशाह हुसैन, जजी में पेशकार थे। इस नौकरी से उन्होंने घर को बहुत कुछ सँभाला। भाइयों को तालीम दी, घर का मकान कुर्क होने से बचाया। इर्शाद हुसैन के तीनों चाचा घर का कर्ज और इज्जत बड़े भाई के सिर ओढ़ा, एक के बाद एक, अलग जा बसे। मियाँ शाहनशाह-हुसैन को इर्शाद हुसैन से बड़ी-बड़ी उम्मीदें थीं।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

परन्तु उन उम्मीदों के पूरी होने से पहले ही अल्लाताला ने उन्हें अपने पास बुला लि ा।

कहावत है--शेर भूखा मर जाता है, घास नहीं खाता। वैसे ही खान्दानी शरीफ इन्सान भूखा रह कर भी समाज में अपना सिर नीचा नहीं होने देता। मियाँ शाहनशाह हुसैन की मृत्यु के बाद घर के भीतर सैकड़ों मुसीबतें सह कर भी इर्शाद और उनके छोटे भाइयों की तालीम जारी रही। घर की औरतों को बाहर निकलने का काम न था। कभी वे घर से निकलतीं तो पर्दे में। टाँगा बिलकुल ड्योढ़ी से सटाकर खड़ा किया जाता। दूधिया सफेद चादरें टाँगे के आगे पीछे तन जातीं। बैठक में कभी मेहमानों के आने पर बेगम साहिबा चाँदी की कामदार तश्तरी में पान और खुशबूदार तम्बाकू भेजना न भूलतीं।

कुंजड़े घर की ड्योढ़ी पर आवाज लगाते तो भीतर से कहला दिया जाता--भई, सब्जी बाजार से आ गई है। मछलीवाली को उत्तर मिलता--गोश्त ले लिया गया। कसाई आवाज लगाता तो उसे उत्तर मिलता--मछली ले ली गई। फेरी बेकार होने पर इन लोगों ने पुकार लगाना छोड़ दिया। पान-ढोलीवाले की फेरी बन्द न हुई। उधार के लिए झंझट होती थी, परन्तु घर में पान का खर्च बन्द न हो सकता था।

मियाँ शाहनशाह हुसैन पर कई वर्षों में लाला महादेवप्रसाद का तीन हजार का कर्ज हो गया था। मियाँ साल छः महीने में सूद की रकम किसी-न-किसी तरह अदा कर ही देते थे। उम्मीद थी, लड़के के बरसिरे रोजगार हो जाने पर कर्ज अदा कर देंगे और अपने पुश्तैनी मकान को नये सिरे से बनवायेंगे। मियाँ शाहनशाह हुसैन की मृत्यु के बाद सूद की रकम मूल में मिलने लगी। चतुर लाला जी ने पिता के कर्ज के कागज इर्शाद हुसैन के नाम बदलवा दिये। सूद की दर कम कर देने के लिये मकान गिरवो हो गया। लाला स्वर्गीय मियाँ शाहनशाह हुसैन की स्मृति का ख्याल कर उनके बेटे से ७००) सालाना सूद के

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

बजाय मकान के किराये के रूप में केवल ६००) रुपया लेने लग गये।

पुश्तैनी मकान हाथ से निकल जाने का दर्द इर्शाद और उनकी वाल्दा दोनों को ही कम न था। लेकिन सूदखोर महाजन से मुकद्दमे-बाजी कर कचहरी जाने की बेइज्जती कैसे बर्दाश्त की जाती? मकान के हिस्से में बसने वाले किरायेदारों से मिलने वाले किराये और महादेव प्रसाद को दिये जानेवाले सूद के अंतर से ही, किसी तरह ढँक-ओढ़ कर, शरीफ खानदान का गुजारा चल रहा था। जाहिरा हवेली उनकी ही थी। लाला महादेवप्रसाद शरीफ इन्सान ठहरे। उन्होंने वायदा कर लिया था—पाँच छः बरस, जब तक इर्शाद बी० ए० पास कर कहीं नौकरी नहीं कर लेते, वे इस मामले में कुछ न बोलेंगे।

बी० ए० पास कर और टेनिस के मैदान में नाम कमा लेने पर भी अच्छी नौकरी पा सकने का मसला हल न हुआ। रोजगार के तौर पर सिवा नौकरी के दूसरी राह न थी। मि० इर्शाद की हवेली से उनकी हैसियत जाँचनेवाले लोग अकसर यह भी कह बैठते—'मियाँ, जमाने हाल में नौकरी आसान नहीं। और फिर नौकरी में रखा ही क्या है? वही महीने में गिनी-चुनी रुपल्ली। कोई रोजगार ही करो!'

इर्शाद को यूनिवर्सिटी की शिक्षा और टेनिस के खिलाड़ी होने के बदौलत बड़े आदमियों से दोस्ती और सम्मान का ख्याल कर दूसरे लोग सलाह देते—'वल्लाह! क्या बनिये-बक्काल का काम करोगे? तुम्हारे खानदान ने हमेशा हुकूमत की है। बड़े-बड़े अफसरान, हुक्मरान राजा-नव्वाबों तक तुम्हारी पहुँच हैं। डिप्टी कलक्टरी तुम्हारे लिये कौन बड़ी बात है?' इस सब्ज आशावाद के बावजूद इर्शाद जानते थे, किसी भी अच्छी सरकारी नौकरी की राह में कम्पिटीशन की कसौटियाँ हैं जहाँ उम्मीदवारों को पहले और दूसरे डिवीजन की चलनियों में छाना

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

जाता है। सिफारिश से बहुत कुछ हो सकता है परन्तु सिफारिश की ड्योढ़ी तक पहुँचना भी तो आसान नहीं। यों सेक्रेट्रियेट की पचास-साठ की नौकरी के लिये किसी की सिफारिश अथवा खुशामद करें, तो उसमें अपनी हेठी।

सोच-सोच कर मि० इर्शाद ने निश्चय किया—उनके लिये नौकरी की गुन्जाइश सरकारी महकमों में नहीं, राजा-रजवाड़ों में ही हो सकती है। जहाँ केवल परीक्षा का ही नहीं, गुण का भी मूल्य हो। बार-बार उन्हें बिल्लूर के नवाब साहब और बिन्दौर के राजा साहब का ख्याल आ जाता। अन्तरंग मित्रों ने समझाया भी—जब वाक़फ़ियत है तो उससे फायदा न उठाने का मतलब क्या? ऐसे लोगों के यहाँ बीसियों मैनेजर और सेक्रेटरी पड़े रहते हैं। बीसियों दूसरी रियासतों और रजवाड़ों में ऐसे लोगों की रिश्तेदारियाँ और लिहाज़ रहते हैं। उन्हें ख्याल हो जाय तो तीन-चार सौ रुपया माहवार कौन बड़ी बात है! लेकिन, बड़े आदमी भी इन्सान का ख्याल उसकी हैसियत से ही करते हैं।

मि० इर्शाद को मालूम था—राजा साहब बिन्दौर मन्सूरी में हैं। अखबारों के खेल-समाचार के कालम में उनका नाम छपता रहता था। साहस कर इर्शाद ने एक पत्र अंग्रेजी में टाइप कर राजा साहब को भेजा—शायद किसी काम से उन्हें मन्सूरी जाना पड़े; यदि ऐसा हुआ तो वह राजा साहब के दर्शन अवश्य करेंगे। बहुत जल्द ही राजा साहब का उत्तर आया—इर्शाद साहब अवश्य मन्सूरी तशरीफ लायें और राजा साहब के मेहमान बनें।

× × ×

मित्रों ने इर्शाद को समझाया—जीवन में ऐसे अवसर कम आते हैं; ऐसे अवसर पर चूकना मूर्खता है। मि० इर्शाद ने कुछ कर्ज लिया। दो नई पतलूनें और कमीजें बनवायीं। टेनिस के धारीदार कोट और

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पतलून पर सफाई और इस्त्री कराई और रैकेट पर वार्निश। एक मित्र से सूटकेस उधार लिया। लखनऊ से मन्सूरी तक थर्डक्लास का किराया था लगभग आठ रुपये। सफर थर्डक्लास में भी हो सकता था; परन्तु मन्सूरी में हैसियत बरकरार रखना जरूरी था। अधिक से अधिक जितना भी हो सका, पूरे साठ रुपये जेब में डाल, इर्शाद घर से चल पड़े।

मंसूरी में मोटर के अड्डे 'सनीव्यू' पर मोटर से उतर, इर्शाद सूटकेस और बिस्तर कुली के सिर पर उठवा, राह पूछते राजा साहब बिन्दौर की कोठी पहुँच सकते थे। परन्तु राजा साहब बिन्दौर का नाम सुनते ही कोठी पर पहुँचा देने के लिये आतुर रिक्शा-कुलियों ने इर्शाद को घेर लिया। औचित्य और सम्मान का ख्याल कर इर्शाद रिक्शा पर लदकर चले और कुली उनका असबाब लेकर पीछे-पीछे।

कोठी पर राजा साहब ने तपाक से इर्शाद का स्वागत किया। उन्हें बरामदे में कुर्सी पर बैठा उपस्थित सज्जनों से परिचय कराया। राजा साहब बिन्दौर ने इर्शाद की प्रशंसा में कहा--'नव्वाब साहब टेनिस ऐसी खेलते हैं कि इनके सामने रैकेट हाथ में लेने की मजाल लखनऊ में तो कोई क्या करेगा !'

इर्शाद साहब को ढोकर लाने वाले रिक्शा-कुली एक ओर खड़े अपनी ओर दृष्टि पड़ने की प्रतीक्षा कर रहे थे। इर्शाद के मन में निरंतर जेब से पैसे निकालकर देने का ध्यान था; परन्तु उस परिस्थिति में इस बात को इतना महत्त्व देना उचित न जँचा। राजा साहब का ध्यान दूसरी ओर होने पर इर्शाद उठे। जेब से पाँच रुपये का नोट निकाल एक कारिन्दे को थमाते हुए उन्होंने कहा--इन कुलियों को पैसे दे दिये जाँय। वे देखते रहे कि नोट कुलियों के पास पहुँचा। बोझ उठाने वाले कुली ने भी आगे बढ़ कर सलाम किया। कुली माथा छूकर अब भी कह रहे थे--'राजा लोग के यहाँ से बख़्शीश !' कारिन्दे ने कुछ और सुनने से इन्कार करने के स्वर में कह दिया—'बस ठीक है, जाओ बाँट

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

लो !' उस नोट से कुछ बचकर जेब में वापिस लौटने की आशा इर्शाद को थी; परन्तु वह उसे पी गये।

इर्शाद साहब के लिए अलग कमरा ठीक हो गया। वे राजा साहब के साथ मेज पर खाना खाते, चाय पीते; बढ़िया से बढ़िया सिगरेटों के डिब्बे हर समय सम्मुख खुले रहते। विशेष अभ्यास न होने पर भी वे देखा-देखी सिगरेट लगा लेते। राजा साहब के साथ उनकी रिक्शा भी चलती। टेनिस कोर्ट में उन्होंने अपने हाथ दिखाये। राजा साहब अपने मित्रों से उनका परिचय कराते और नव्वाब साहब कह कर सम्बोधन करते।

इर्शाद साहब राजा साहब के साथ हैकमैन, सेवोय और शार्लविली की पार्टियों और नाचों में जाते। प्रति दिन सैकड़ों रुपया पार्टी, डांस और ड्रिङ्क की सूरत में बहता नजर आता। इस समृद्धि में इर्शाद के लिये तीन-चार सौ निकल आना कौन बड़ी बात थी ? प्रश्न था केवल उस ओर ध्यान जाने भर का। समृद्धि के अनुपात से, जो जितना समृद्ध समझा जाता है उसका उतना ही अधिक सम्मान होता है; उतने ही अधिक रुपये उसके लिये बहाये जाते हैं। इस परिस्थिति में रुपये की कमी और गरीबी की चर्चा करने का साहस इर्शाद साहब के लिये संभव न था। किसी समय एकान्त देख वे इस सम्बन्ध में राजा साहब से बातें करने का विचार करते रहे। परन्तु वह समय न आया। और जब कभी कुछ मिनट के लिये एकांत मिला भी तो असमृद्ध पहचाने जाकर सम्मान खो देने के भय ने गले को जैसे अवरुद्ध सा कर दिया।

इर्शाद ने मन को समझाया, वह भीख नहीं माँगना चाहता। वह काम और मेहनत करने के लिये तैयार है। परन्तु आँखें निरंतर देख रही थीं—आदर-सम्मान काम और मेहनत का नहीं, बल्कि काम और मेहनत करने की आवश्यकता न होने का ही है। रुपये का सम्मान अवश्य है; परन्तु रुपया पैदा करने वाले श्रम का निरादर ही है। एक सप्ताह तक अवसर से किसी भी प्रकार लाभ उठा सकने में अपने को असमर्थ

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पा इर्शाद साहब ने राजा साहब से लखनऊ लौट जाने की इजाजत चाही।

राजा साहब ने आग्रह किया—'अभी दो चार रोज और ठहरिये।'

राजा साहब की इच्छा के अनुकूल सेक्रेटरी साहब ने सुझाया—'नव्वाब साहब' ट्रेनों में भीड़ का क्या हाल है? शायद ख्याल नहीं रहा? तीन दिन से कम नोटिस पर तो सीट रिजर्व हो ही नहीं सकती!'

सीट रिजर्व होने या न हो सकने के प्रश्न की उपेक्षा के भाव से इर्शाद साहब ने उत्तर दिया—'वह ऐसी कौन सी बात है?

उस उपेक्षा की चिन्ता न कर, अपनी उपयोगिता दिखाने के लिये, टेलीफोन की ओर बढ़ते हुये सेक्रेटरी साहब ने राजा साहब को सम्बोधन किया—'हुजूर नव्वाब साहब के लिये किस तारीख के लिये सीट रिजर्व करा दी जाय? आज पाँच है।'

इर्शाद की ओर देख राजा साहब ने फर्माया—'ऐसी क्या जल्दी है। दो रोज तो और ठहरिये, छः और सात को रहिये। हाँ, आठ के लिये करा दो।'

सेक्रेटरी साहब ने मंसूरी में रेल के दफ्तर को फोन किया। उत्तर मिला—सीटें पूरे सप्ताह के लिए रिजर्व हो चुकी हैं। सेक्रेटरी के इस उत्तर से इर्शाद साहब को सान्त्वना हुई थी। किन्तु सेक्रेटरी साहब यों पराजय स्वीकार करने के लिये तैयार न थे। दुबारा फोन किया और जरा ऊँचे स्वर में बोले—'सुनिये, हम राजा साहब बिन्दौर के यहाँ से बोल रहे हैं। राजा साहब फर्माते हैं, एक सीट की जरूरत है, नव्वाब इर्शाद हुसैन साहब के लिये, आठ तारीख को हावड़ा इक्सप्रेस में लखनऊ तक।'

अबकी बार उत्तर मिला था। मुस्करा कर सेक्रेटरी साहब नें फर्माया—हुजूर को सलाम बोल रहे हैं और कहते हैं, टिकट अलग रख लिया है; आदमी भेज कर मँगा लीजियै।' टिकट की कीमत भी उन्होंने बतला दी—इकतालीस रुपये आठ आने।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

इर्शाद साहब का चेहरा पीला पड़ जाना चाहता था। हृदय की सम्पूर्ण शक्ति और साहस से उन्होंने चेहरे के भाव को सम्भाला। उनके लिये राजा साहब की मार्फत सीट रिजर्व हो चुकी थी, टिकट खरीद लिया गया था। बयालीस रुपये तुरन्त जेब से न निकाल देने का अर्थ होता, अपने आप को उस सब सम्मान के लिये अनधिकारी प्रमाणित करना जो ऊँचे दर्जे में सफर करने वाले राजा साहब के अतिथि के रूप में उनका किया जा रहा था।

इर्शाद साहब के मंसूरी से चलने के दिन राजा साहब ने दोपहर को एक अच्छी खासी बिदाई की दावत (फेयरवेल लंच) टेनिस के खिलाड़ियों को दे डाली। नये खिलाड़ियों से परिचय प्राप्त करने का राजा साहब के लिये यह अच्छा अवसर था। दोपहर की दावत के बाद तीन बजे नीचे जाने वाली मोटर से उन्हें बिदा करने के लिये सेक्रेटरी साहब रिक्शा में सनीव्यू तक आये। पहले से फोन कर उनके लिये टैक्सी में सीट रिजर्व की जा चुकी थी।

एक रुपया देकर मोटर लारी में चुपचाप नीचे चले जाने के बजाय, कार की आरामदेह पिछली गद्दी पर बैठकर जाना इर्शाद को सूलों की सेज जान पड़ रहा था। जेब में शेष रह गये केवल चार रुपये इसके लिये पर्याप्त भी होंगे या नहीं ? यदि सेक्रेटरी साहब सनीव्यू तक साथ न आते तो गले पर यह आखिरी छुरी क्यों फिरती ? परन्तु उनके साथ न आने का अर्थ होता, इर्शाद के सम्पूर्ण सत्कार का विद्रूप में परिणत हो जाना ! राजा साहब की कोठी से चलते समय नौकरों ने एक पंक्ति में खड़े होकर सलाम किया। इस सलाम का अर्थ वह समझा न हो सो बात नहीं; परन्तु हृदय पर पड़तो भाले की इस चोट को वह अपने असामर्थ्य से आँखें फिरा, होठ काट कर सह गया !

इतनी बड़ी हैसियत के मुसाफिर से किराये का तकाजा करना मोटर कम्पनी के एजेण्ट के लिये उचित न था। उसने विनय से रसीद सेक्रेटरी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

साहब की मार्फत 'नव्वाब' साहब के हाथ में पहुँचा दी। रसीद की ओर नजर डाले बिना सेक्रेटरी ने उसे 'नव्वाब' साहब के हाथ में दे दी। 'नव्वाब' साहब ने भी प्रकट उपेक्षा से उसे पतलून की जेब में खोंस लिया।

कार के चल पड़ने पर उस रसीद की उपेक्षा सम्भव न थी। इर्शाद ने रसीद निकाली और देखा—तीन रुपये आठ आने ! फिर ध्यान से देखा और भाग्य के सम्मुख सिर झुका एक दीर्घ निःश्वास ले वह सीने पर बाँहें बाँध, सीट से पीठ टिका बैठ गया। तेज चाल से फिसलती जाती कार की आरामदेह गद्दी पर बैठ उसकी कल्पना अनुभव कर रही थी—एक कठोर अग्नि परीक्षा में पूरा उतर कर वह सुरक्षित चला आ रहा है। राजा साहब की कोठी में बिताये दस दिन का उसके जीवन से भिन्न एक अस्तित्व था। दस दिन के इस जीवन का कोई आगा-पीछा न होने पर भी उसमें एक संतोष था। जैसे-तैसे उसने उसे निभा दिया !

और जब देहरादून स्टेशन पर पहुँच ड्राइवर ने गाड़ी का पिछला दरवाजा खोल सलाम किया, इर्शाद सम्भ्रम सहित उठ गाड़ी के बाहर आया। जेब में शेष रुपये-रुपये के चार नोट उसने ड्राइबर की ओर बढ़ा दिये। इर्शाद से पहले उतरनेवाले अंग्रेज साहब पाँच रुपये का नोट ड्राइबर को दे, धन्यवाद के सलाम की प्रतीक्षा न कर सीधे स्टेशन की ड्योढ़ी में चले गये थे। ड्राइबर ने झुक कर जो सलाम नव्वाब साहब को किया वह निश्चय ही आठ आने से अधिक मूल्य का था और जब ड्राइबर ने चारों नोट जेब में रख लिये तब उपाय ही क्या था ?

कार में सफर करने वाले मुसाफिर से आदेश की प्रतीक्षा किये बिना कुली इर्शाद का हल्का असबाब उठा स्टेशन के भीतर चल दिया। गाड़ी अभी प्लेटफार्म पर लगी न थी। सामान पहले दर्जे के मुसाफिरों के लिये विश्राम करने के कमरे में रख दिया गया।

अंग्रेज मुसाफिर गुसलखाने में चला गया था। इर्शाद पंखे के नीचे

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

आराम कुर्सी पर सिर को दोनों हाथों से थाम बैठ गया। वह परेशान था, गाड़ी में असबाब रखने के बाद कुली को कम से कम चार आने पैसे देने ही होंगे। और इर्शाद की जेब में भाग्य से एक भी पैसा शेष न था। इन चार आने पैसों के अभाव में नव्वाबी के सम्पूर्ण अभिनय की इमारत ढहकर गिर जाना चाहती थी। इर्शाद ने किसी चमत्कार की आशा में सभी जेबों में हाथ डाले; परन्तु जो था नहीं वह कहाँ से निकल आता ?

सहसा मस्तिष्क में एक विचार सूझा। अधमुँदी आँखों से अपने विचार की उधेड़बुन में वह कितनी ही देर बैठा रहा। रिफ्रेशमेंट रूम का बैरा चाय के लिये पूछने आया। उसे इर्शाद ने सिर हिला इन्कार कर दिया। गाड़ी के प्लेटफार्म पर आते ही वह गुसलखाने में चला गया।

आधा घण्टा……पैंतालीस पचास मिनिट……पूरा एक घण्टा गुजर गया। कुली बार-बार झांककर देख रहा था। गाड़ो ने सीटी दे दी, गार्ड साहब ने सोटी बजाई, हरी झंडी दिखाई, गाड़ी चल दी। लेकिन साहब गुसलखाने से निकले नहीं। जब साहब गुसलखाने से निकले गाड़ी छूट चुकी थी।

इर्शाद ने परेशानी के भाव में पूछा—क्या गाड़ी छूट गई ? कुली और वेटिंगरूम के बैरे ने सिर झुका कर उत्तर दिया—'हुजूर !'

इर्शाद ने टिकट चेकर बाबू के पास जाकर शिकायत की—उसके गुसल करते समय ही गाड़ी छूट गई।

उत्तर मिला—'अब आप देहली एक्सप्रेस से मुरादाबाद जाकर लाहौर-हवड़ा मेल पकड़ सकते हैं। लेकिन सीट उसमें रिजर्व होना मुश्किल है।' मुरादाबाद में गाड़ी की प्रतीक्षा की असुविधा को असह्य बता इर्शाद ने कहा—'अब आज नहीं, वह कल सीधा लखनऊ को गाड़ी से ही जायगा और उसका फर्स्ट क्लास का टिकट वापिस कर लिया जाय।

इर्शाद के उसी टिकट से आज के बजाय कल सफर करने में

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

टिकट बाबू को कोई एतराज न था। टिकट वापिस भी हो सकता था; परन्तु वह मंसूरी में खरीदा जाने के कारण देहरादून में नहीं। उसके लिये लखनऊ में ट्रेफिक-सुपरिंटेण्डेण्ट के दफ्तर में टिकट भेज कर पत्र लिखा जाना जरूरी था।

इतने गहरे बिचार से चली गई चाल उलटी पड़ जाने से इर्शाद के पाँव तले से धरती खिसक गई। वह फिर आराम कुर्सी पर जा पड़ा। वेटिंगरूम के बाहर खड़ा कुली प्रतीक्षा कर रहा था। और इर्शाद.... वह कुली के चार आने माँग सकने के अधिकार के सम्मुख असमर्थ था। सब कुछ सहकर भी नव्वाबी की शानदार मेहराब से कुञ्जी की ईंट खिसकी जा रही थी--केवल चार आने के रूप में !

———

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पहली तारीख

[श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र']

मैं २५) रु० मासिक वेतन पाने वाला एक क्लर्क हूँ। जिस जगह पर जितने वेतन पर भरती किया गया था, बस वहाँ का वहीं हूँ, न जगह आगे खिसकी, न वेतन ही सरका। कोई वस्तु एक ही स्थान पर स्थिर नहीं रह सकती, जैसे कि इसी नियम की सार्थकता सिद्ध करने के लिए वेतन पीछे तो खिसक जाता—साहब नाराज हो गये, जुर्माना डाट दिया—पर भला वह आगे क्यों बढ़े, मर्यादा उल्लंघन करना भी कोई भली बात है।

हमारे लोक में महीने को एक पूरी चतुर्युगी माना जाता है, पहला अठवाड़ा सतजुग, दूसरा त्रेता, तीसरा द्वापर तथा चौथा कलयुग। पहले तीन चाहे अपने भरपूर प्रभाव के साथ उपस्थित न होते हों, पर चौथा तो अपने चारों चरणों से आ जमता है और अन्तिम दो दिन तो घोर नरक की यातना के समझिए। फिर भी हम जीते क्यों रहते हैं ? केवल आशा के बल पर ! २० तारीख टलते-टलते तक कलयुग का प्रथम चरण पड़ने लग जाता है। गोल-गोल चिलकौए लुढ़क कर अपनी राह लग चुके होते हैं। बीबी ने कहा, "आज साग नहीं है।" तो झल्ला पड़े, "नहीं है तो क्या किया जाय, बारी थोड़े ही उगाई जायगी"। दूसरे दिन वह बोलीं, "दाल नदारद है" तो हमने कह दिया, "न सही, क्या बिना दाल के काम न चलेगा !" एक दिन और कटा। "नमक भी तो नहीं रहा।" यह सुन कर मैंने कहा। "तो मौज करो, देख-भाल कर चीज नहीं उठाई जाती !" गरज यह कि यों ही दिन पर दिन कटते जाते हैं और घोर नैराश्यान्धकार हमें वेष्टित करता जाता है। पर वाहरी आशा ! तू उस अन्धकार की प्रकाशरश्मि है, तू वास्तव में अमृत-दायिनी है। हमारी दृष्टि लग जाती है पहली

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तारीख़ पर। ललुआ ने कहा, "किताब नहीं है", तो हमने कह दिया "पहली तारीख आने दो।" मुलिया ने कहा, "स्कूल में सिलाई सीखने को कपड़ा चाहिए" तो बोले, "हाँ, सुन तो लिया, आने दे पहली तारीख।" छोटी-सी चुनिया बोली, "आँ बापू ठीक तो कहते हैं, पहली तारीख़ को हमारे बापू जबेली लाएँगे! क्यों बापू?" होशियार चुनिया ने प्रश्न और उत्तर दोनों अपने आप ही समाप्त कर दिये। सूखी हँसी हँसती हुई चुनिया की मां बोली, "और मेरे लिए।" गहरे नैराश्य-तिमिर से भरी, गढ़ों में धँसी हुई उसकी आँखों से जैसे ही मेरे निगाहें चार हुईं उसकी मुस्कराहट वेदना में बदल गई और गहरी साँस लेती हुई इस प्रकार आँखें पोछती हुई कमरे से निकल भागी जैसे कि किर-किटी गिर गई हो। और मैं सोच रहा था—'पहली तारीख आ रही है, पर मेरे लिए!" किसी के लिए कुछ भी न हो सकेगा! ललुआ के पास किताब क्या आज से नहीं है। बेचारे पर मार पड़ती है, पढ़ नहीं पाता, इसलिए पास भी न होगा, तब घर बाहर सभी के तिरस्कार का भाजन बनेगा। हर पहली तारीख का वायदा किया जाता है, पर जब कल कभी नहीं आता तो इतने दिनों बाद आने वाली वह पहली तारीख़ ही शीघ्र क्योंकर आने लगी! मुनिया का भी यही हाल है। छोटी सी चुनिया ने न जाने कब जलेबी चखी थी, इतनी मीठी वह लगी उसे कि जीभ ठीक-ठीक लौट भी तो नहीं पाती। तभी तो वह कहती है—"बापू जबेली लाएँगे!" पर न आ सकी वह पहली तारीख जिसको बापू "जबेली" ला सकते! सुखदा की आँखों में इतनी निराशा क्यों न हो, उसकी मुस्कान के पीछे से वेदना क्यों न फूट भागे। जब से इस घर में आई है, साल-भर में एक साधारण-सी धोती ही तो नसीब होती है उसे। साल-भर से पहले फट जाने पर गाँठी-गूँथो, चाहे जैसे लाज ढाँपो। उसी पहली तारीख को दूसरी धोती मिल सकती है। उसे शिकायत का मौका नहीं। वह देखती है कि मुझ कमाऊ बैल का

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

भी तो यही हाल है। डेढ़ रुपये का जूता साल-भर चलना ही चाहिए। पहले फट जाय तो नंगे पैरों दफ्तर जाता हूँ। मतलब यह कि मैं २५) मासिक वेतन पाने वाला एक क्लर्क ही तो हूँ।

आज पहली तारीख़ है। ललुआ, मुलिया और चुनिया तीनों बड़े प्रसन्न हैं, ताली बजाते, नाचते-कूदते फिरते हैं। ललुआ बोला, "आज मेरी किताब आयगी।" मुलिया ने कहा, "और मेरे लिए कपड़ा भी तो।" चुनिया ने कहा, "चल, किसी को कुछ नहीं, मेरे बापू मेरे लिए जबेली लाएँगे। क्यों बापू?" मैंने अनमना-सा होकर कह दिया—"हूँ।" "हाँ बापू जबेली लाएँगे, बापू जबेलो लाएँगे" कहती-कहती, ताली पीटती-पीटती वह तल्लीन हो गई। मैं फ़िलासफर बन रहा था, सोच रहा था, बजट कैसे पूरा किया जाय, रुपये तो पच्चीस से सवा पच्चीस होने को न थे, हाँ, इकन्नी टिकट की भले ही कम हो जाय। पिछले महीने की एक इकन्नी भी तो कभी न बची जिससे टिकट की इकन्नी पच्चीस में से न कटवाकर पूरे पच्चीस भी पा जाता! हाँ, तो पच्चीस में से गये सरकारी कर्जे के पाँच, रहे बीस, नहीं-नहीं आना कम बीस। गेहूँ, दाल, नमक, मसाला, सभी कुछ तो लेना है। रोटी बिना लकड़ी के तो न पक जायगी, उसका भी तो प्रबन्ध करना ही पड़ेगा। घी? घी हमारे भाग्य में कहाँ। फिर भी दाल-साग पानी में तो न छोंके-बघारे जायँगे। चुनिया को माँ का दूध कभी नसीब नहीं हुआ। उसके लिए दूध लेना ही पड़ता है, और उसे बड़े जतन से रखना पड़ता है, कहीं ललुआ या मुलिया के हाथ न चढ़ जाय। अगर उसके हाथ लग गया तो फिर चुनिया रो-रो कर ही क्यों न मर जाय, और दूध कहाँ से आवेगा। दूध वाली के गये चार। कपड़ेवाले से पिछली बार छिपकर निकल आया था, इस बार जान न बच सकेगी। वह दफ्तर में ही धर दबाएगा। और सुख़दा की धोती को भी तो सालभर हो गया। मेरे पास भी तो कुछ नहीं है। देखा जायगा।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पहली तारीख के सवेरे 'नगद नारायण' के अभाव में जैसा भोजन बन सकता था वैसा खाकर कपड़े पहन जल्दी-जल्दी दफ्तर को चला, टूटे हुए जूते से धूल ऊपर को उछालते हुए। गली में से भीतर को मुड़कर देखा दो आँखों को, जिनमें स्पष्ट अंकित था—"और मेरे लिए !"

× × ×

वेतन लेने का समय आया। अरे यह तो मैं भूल ही गया था! इस महीने तो साहब की कृपा से पच्चीस के तेईस ही रह गये !! टिकट का एक आना देकर जुर्माना और कर्ज का रुपया कटाकर दफ्तर से लपक कर निकलने ही वाला था कि बजाज ने आ घेरा! बोला, "वाह बाबूजी हमें ऐसे गाहक मिले तो हुआ चौपट। उधर से निकलना भी छोड़ गये। पिछला दो, नया उधार करो; यों तो हमें भी चार कौड़ियाँ मिलती हैं; नहीं तो क्या धरा है इस धंधे में ?" उसकी सूरत देखते ही मेरा चेहरा पीला पड़ गया था, साथियों के सामने हिजो देखकर तो हाथ-पैर और भी फूल गये, साँस रुँधने लगा। जैसे-तैसे बोला, "मैं तो उधर आ ही रहा था।" वह बोला, "खूब तो आये, अच्छा लाइए।" मैंने तीन रुपये निकालकर उसके हांथ पर धर दिये। वह बोला, "नहीं साहब, मेरा हिसाब यहाँ तक का चुकता कर दीजिए। आगे चाहे आप ५०) का माल और उठा लाइए। जैसे-तैसे कर वह पाँच पर राजी हुआ। घर से दफतर को आते हुए गली में से जो दो आंखें देखी थीं वह अचानक आँखों के सामने से घूम गईं। उनमें अंकित था—"और मेरे लिए!" सोचा एक धोती उसके लिए लेता चलूँगा। बजाज से मैंने कहा, "कपड़ों के लिए आऊँ क्या ?" तो बोला, "हिसाब चुकता होने पर।" उसकी रुखाई से कलेजा टूक-टूक हो गया। घर लौटने पर वही आँखें उसी करुणा सूचक मुद्रा में झाँकती मिलेंगी और मैं उनकी ओर ताक भी न सकूँगा। यह सोचता हुआ चल पड़ा, एक आना कम तेरह रुपये लेकर। गेंहू, दाल, नमक मसाला और लकड़ी पर इतना खर्च हो

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

गया कि घर लौटने तक दूधवाली के दाम भी न बचे। मेरी मुख-मुद्रा देखकर ललुआ, मुलिया तो खिसक गये, चुनिया ने अभी इतना मनोविज्ञान न सीख पाया था। आकर पैरों से लिपट गई—"बाबू जवेली लाये ?" मैंने कहा, "नहीं लाया !" हृदय को न संभाल सका आँखें डबडबा आईं। "क्यों नहीं लाये !" उसने पूछा।

"रुपये तो सब गिर गये।" आंखें पोंछते हुए मैंने उत्तर दिया। "सब गिर गये ! तो अब जवेली कब ला दोगे ?" सहमी सी होकर चुनिया ने पूछा। "पहली तारीख को।" जबाब सुनकर चुनिया उछलती-कूदती चली गई। सुखदा को बुलाकर मैंने कहा, "आज से ही चुनिया का दूध बन्द।' उस समय मेरी छाती पर साँप लोट गया। सुखदा ने सिर झुकाकर अनुमति दी।

और आज थी पहली तारीख !

———

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

"आज ही से; कहता है, सिर में दर्द है।"

"बुखार तो नहीं है?"

"मालूम तो नहीं होता। आप चल कर देख लेते, तो अच्छा था।"

वैद्यजी का मनोरथ सिद्ध हुआ। उन्होंने जल्दी से कपड़े पहने, और लाजवन्ती के साथ हो लिये। हेमराज़ बुखार से बेसुध पड़ा था।

वैद्य जी ने नाड़ी देखी, माथे पर हाथ रक्खा, और फिर कहा—"कोई चिंता नहीं। दवा देता हूँ, बुखार उतर जायगा।"

लाजवन्ती के डूबते हुए हृदय को सहारा मिल गया। उसने दुपट्टे के आँचल से अठन्नी खोली, और वैद्यजी की भेंट कर दी। वैद्यजी ने मुँह से 'नहीं-नहीं' कहा, मगर हाथों ने मुँह का साथ न दिया।

—२—

कई दिन बीत गये, हेम का बुखार नहीं घटा। वैद्यजी ने कई दवाइयाँ बदलीं, परन्तु किसी ने अपना असर न दिखाया। लाजवन्ती की चिंता बढ़ने लगी। वह रात-रातभर उसके सिरहाने बैठी रहती। लोग आते और धीरज दे-देकर चले जाते; परन्तु लाजवन्ती का मन उनकी बातों की ओर न था। वह अपने मन की पूरी शक्ति से हेम की सेवा में लगी रहती थी।

एक दिन उसने वैद्यजी से पूछा—"क्या बात है, जो यह बुखार नहीं उतरता?"

वैद्यजी ने एक कटाक्ष-विशेष से, जो प्रायः वैद्य लोग ही किया करते हैं, उत्तर दिया—"मियादी बुखार है।"

लाजवन्ती ने तड़पकर पूछा—"मियादी बुखार क्या?"

"अपनी मियाद पूरी करके उतरेगा।"

"पर कब तक उतरेगा?"

"इक्कीसवें दिन उतरेगा, इससे पहले नहीं उतर सकता।"

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

"आज ग्यारह दिन हो गये हैं।"

"बस दस दिन और हैं। किसी तरह यह दिन निकाल दो, भगवान भला करेगा।"

लाजवन्ती का माथा ठनका। हिचकिचाते हुए बोली—"कोई अंदेसा तो नहीं है? सच-सच बता दीजिए।"

वैद्यजी थोड़ी देर चुप रहे। इस समय वह सोच रहे थे कि उसे सच-सच बतायें, या न बतायें। आखिर बोले—"देखो बुखार दुस्साध्य-सा है; हानिकारक भी हो सकता है। मेरी सम्मति में हेम के पिता को बुलवा लो।"

लाजवन्ती सहम गई। रेत के स्थलों को मीठे जल की नदी समझ कर जब हरिण पास पहुँच कर देखता है कि नदी अभी तक उतनी ही दूर है तो जो दशा उसके मन की होती है, वही दशा इस समय लाजवन्ती की हुई। उसे आशा नहीं, निश्चय हो गया था कि हेम एक-आध दिन में ठीक हो जायगा। उसी तरह खेलता फिरेगा, उसी तरह नाचता फिरेगा। माँ देखेगी, खुश होगी। लोग बधाइयाँ देंगे। मगर वैद्य की बात सुनकर उसका दिल बैठ गया। उसका पति रामलाल सचदेव मुलतान में नौकर था। उसने उसे पत्र लिखा, वह तीसरे दिन पहुँच गया। इलाज दुगनी सावधानी से होने लगा। यहाँ तक कि दस दिन और भी बीत गये। अब इक्कीसवाँ दिन सिर पर था। लाजवन्ती और रामलाल दोनों घबरा गये। हेम की देह अभी तक आग की तरह तप रही थी। सोचने लगे, क्या बुखार एकाएक उतरेगा?

वैद्य ने आकर नाड़ी देखी, तो घबराकर बोले "आज की रात बड़ी भयानक है। सावधान रहना, बुखार एकाएक उतरेगा।"

—३—

लाजवन्ती और रामलाल दोनों के प्राण सूख गये। वैद्य के शब्द किसी आने वाले भय की पूर्व-सूचना थे। रामलाल दवायें सँभालकर

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

बेटे के सिरहाने बैठ गये। परन्तु लाजवन्ती के हृदय को कल न थी। उसने संध्या-समय थाल में घी के दीपक जलाये और मन्दिर की ओर चली। इस समय उसे आशा अपनी पूरी जीवन-सामग्री के साथ सामने नाच करती हुई दिखाई दी। लाजवन्ती अनन्यभाव से मन्दिर में पहुँची, और देवी के सामने गिरकर देर तक रोती रही। जब थककर उसने सिर उठाया, तो उसका मुख-मण्डल शांत था, जैसे तूफान के बाद समुद्र शांत हो जाता है। उसको ऐसा मालूम हुआ, जैसे कोई दिव्य शक्ति उसके कान में कह रही है कि तूने आँसू बहाकर देवी के पाषाण-हृदय को पिघला दिया है। परन्तु उसने इतने ही पर संतोष न किया; मातृ-स्नेह ने भय को चरम-सीमा पर पहुँचा दिया था। लाजवन्ती ने देवी की आरती उतारी, फूल चढ़ाये, मन्दिर की परिक्रमा की और प्रेम के बोझ से काँपते हुए स्वर से मानता मानी कि "देवी माता! मेरा हेम बच जाय, तो मैं तीर्थ-यात्रा करूँगी!"

यह मानता मानने के बाद लाजवन्ती को ऐसा जान पड़ा, जैसे उसके दिल पर से किसी ने कोई बोझ हटा लिया है, जैसे उसका संकट टल गया है, जैसे उसने देवताओं को खुश कर लिया है। उसे निश्चय हो गया कि अब हेम को कोई भय नहीं है। लौटी, तो उसके पाँव भूमि पर न पड़ते थे। उसके हृदय-समुद्र में आनन्द की तरंगें उठ रही थीं। उड़ती हुई घर पहुँची, तो उसके पति ने कहा—"लो बधाई हो, तुम्हारा परिश्रम सफल होने को है; बुखार धीरे-धीरे उतर रहा है।"

लाजवन्ती के मुख पर प्रसन्नता थी और नेत्रों में आशा की झलक। झूमती हुई बोली—"अब हेम को कोई डर नहीं है। मैं तीर्थ-यात्रा की मानता मान आई हूँ।"

रामलाल ने तीर्थ-यात्रा के खर्च का अनुमान किया, तो हृदय बैठ गया; परन्तु पुत्र स्नेह ने इस चिंता को देर तक न ठहरने दिया। उसने बादलों से निकलते हुए चन्द्रमा के समान मुस्करा कर उत्तर दिया—

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

"अच्छा किया, रुपये का क्या है, हाथ का मैल है, आता है, चला जाता है। परमेश्वर ने एक लाल दिया है, वह जीता रहे। यही हमारी दौलत है।

लाजवन्ती ने स्वामी को सुला दिया और आप रात-भर जागती रही। उसके हृदय पर ब्रह्मानन्द की मस्ती छा रही थी। प्रभात हुआ, तो हेम का बुखार उतर गया था। लाजवन्ती के मुख-मंडल से प्रसन्नता टपक रही थी, जैसे संध्या के समय गौओं के स्तनों से दूध की बूंदें टपकने लगती हैं।

वैद्यजी ने आकर देखा तो उनका मुख-मंडल भी चमक उठा। अभिमान से सिर उठाकर बोले—"अब कोई चिंता नहीं। तुम्हारा बच्चा बच गया।"

लाजवन्ती ने हेम की देह पर हाथ फेरते हुए कहा—"क्या से क्या हो गया है।"

वैद्य ने लाजवन्ती की ओर देखा और रामलाल से बोले—"यह सब इसी के परिश्रम का फल है।"

लाजवन्ती ने उत्तर दिया—"देवी माता की कृपा है, अथवा आपकी दवा के प्रभाव का फल है। मैंने क्या किया है, जो मेरे परिश्रम का फल है?"

"मैं तुम्हें दूसरी सावित्री समझता हूँ। उसने मरे हुए पति को जिलाया था, तुमने पुत्र को मृत्यु के मुँह से निकाला है। तुम यदि दिन रात एक न कर देतीं, तो हेम का बचना सर्वथा असंभव था। यह सब तुम्हारी मेहनतों का फल है। भगवान प्रसन्न हो गया। बच्चा बचा नहीं, दूसरी बार पैदा हुआ है।"

रामलाल के होंठों पर मुस्कराहट थी, आँखों में चमक। इसके सातवें दिन वह अपनी नौकरी पर चले गये, और कहते गये कि तीर्थ-यात्रा की तैयारी करो।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

—४—

तीन महीने बीत गये; लाजवन्ती तीर्थ-यात्रा के लिए तैयार हुई। अब उसके मुख पर फिर वही आभा थी; आँखों में फिर वही चमक, दिल में फिर वही खुशी। हेम आँगन में इस प्रकार चहकता फिरता था, जैसे फूलों पर बुलबुल चहकता है। लाजवन्ती उसे देखती, तो फूली न समाती थी। तीर्थयात्रा से पहले की रात को उसके आँगन में सारा गाँव इकट्ठा हो रहा था। झाँझ और करतालें बज रही थीं। ढोलक की थाप गूँज रही थी। स्त्रियाँ गाती थीं, बजाती थीं, शोर मचाती थीं। दूसरी तरफ कहीं पूरियाँ बन रही थीं, कहीं हलुआ। उनकी सुगंध से दिमाग तर हुए जाते थे। लाजवन्ती इधर से उधर और उधर से इधर आ-जा रही थी, मानो उसके यहाँ ब्याह हो। एक ओर निचिंते साधु सुलफे के दम लगाकर गाँव की हवा को शुद्ध कर रहे थे। उनकी ओर गाँव के लोग इस तरह देखते थे, जैसे किसान तहसीलदार की ओर देखते हैं। आँखों में श्रद्धा-भाव के स्थान में भय और आतंक की मात्रा कहीं अधिक थी। लाजवन्ती से कोई मैदा माँगता था, कोई घी। कोई कहता था, हलवाई खाँड़ के लिए चिल्ला रहा है। कोई पूछता था, अमचूर का बरतन कहाँ हैं। कोई और समय होता, तो लाजवन्ती घबरा जाती। पर इस समय उसके मुख पर जरा घबराहट न थी। सोचती थी; कैसा सौभाग्य है, जो यह दिन मिला। आज घबराहट कैसी?

परन्तु सारा गाँव प्रसन्न हो, यह बात न थी। वहीं स्त्रियों में बैठी हुई एक बूढ़ी स्त्री असीम दुःख में डूबी हुई थी। यह लाजवन्ती की पड़ोसिन हरो थी। अत्यंत दुःख के कारण उसके कंठ से आवाज न निकलती थी। नगर होता तो वह इस उत्सव में कभी सम्मिलित न होती। मगर गाँव की बात थी; न आती, तो उँगलियाँ उठने लगतीं। आनंदमय हास-परिहास के बीच में उसका मस्तिष्क दुःख और शोक

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

के कारण ऐसे खौल रहा था, जैसे ठंडे समुद्र में गरम जल का स्रोत उबल रहा हो। वह स्रोत बाकी समुद्र से कितना परे, कितना अलग होता है ?

इसी तरह रात के चार बज गये; लोग खा-पीकर आराम करने लगे। जो बच रहा, वह गरीबों को बाँट दिया गया। लाजवन्ती ने लोगों को बिदा किया और चलने की तैयारी में लगी। उसने एक टीन के बक्स में जरूरी कपड़े रक्खे, एक बिस्तर तैयार किया, कंठ में लाल रंग की सूती माला पहनी, माथे पर चन्दन का लेप किया। गऊ पड़ोसिन को सौंपी, और उससे बार-बार कहा—"इसका पूरा-पूरा ध्यान रखना। जा रही हूँ, मगर मेरा मन अपनी गऊ में रहेगा।" सहसा किसी की सिसकी भरने की आवाज सुनाई दी। लाजवन्ती के कान खड़े हो गये। उसने चारो तरफ देखा, मगर कोई दिखाई न दिया। इस समय सारा गाँव सुख स्वप्न में अचेत पड़ा था। यह सिसकी भरने-वाला कौन है ? यह सोचकर लाजवन्ती हैरान रह गई। वह आँगन में निकल आई और ध्यान से सुनने लगी। सिसकी की आवाज फिर सुनाई दी।

लाजवन्ती छत पर चढ़ गई, और पड़ोसिन के आँगन में झुककर जोर से बोली—"माँ हरो !"

कुछ देर तक सन्नाटा रहा। फिर एक चारपाई पर से उत्तर मिला—'कौन है, लाजवन्ती ?"

आवाज में आँसू मिले हुए थे।

लाजवन्ती जल्दी से नीचे उतर गई, हरो के पास पहुँच कर बोली—"माँ, क्या बात है ! तू रो क्यों रही है !"

हरो सचमुच रो रही थी। परन्तु अपना दुःख लाजवन्ती के सामने कहते हुए उसके नारी-दर्प को बट्टा लगता था, इसलिए अपनी वास्तविक अवस्था को छिपाती हुई बोली—"कुछ बात नहीं।"

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

"तू रो क्यों रही हो !"

हरो के रुके हुए आँसुओं का बाँध टूट गया; उसका दुःखी हृदय सहानुभूति की एक चोट को भी सहन न कर सका। वह सिसकियाँ भर-भर कर रोने लगी।

लाजवन्ती ने फिर पूछा—"माँ ! क्या बात है, जो इस समय रो रही है ! मैं तेरी पड़ोसिन हूँ, मुझसे न छुपा।"

हरो ने कुछ उत्तर न दिया। वह सोच रही थी कि इसे बताऊँ या न बताऊँ। प्रभात हो चला था; कुछ-कुछ प्रकाश निकल आया था। लाजवन्ती चलने के लिए आतुर हो रही थी। मगर हरो को क्या दुःख है, यह जाने बिना चले जाना उसके लिए कठिन था। उसने तीसरी बार फिर पूछा--'माँ बता दो ना, तुम्हें क्या दुःख है !"

हरो ने दुःखी होकर कहा--'क्या तुम उसे दूर कर दोगी !"

"हो सका, तो दूर कर दूँगी।"

"यह असंभव है।"

संसार में असंभव कोई बात नहीं, भगवान सब कुछ कर सकता है।"

हरो थोड़ी देर तक चुप रही; फिर धीरे से बोली--"बेटी का दुःख खा रहा है। रात-रात भर रोती रहती हूँ। जाने यह नाव कैसे पार लगेगी।"

"यह क्यों ? उसके ब्याह का खर्च तो तुम्हारे जेठ ने देना मंजूर कर लिया है।"

'ऐसे भाग होते तो रोना काहे को था।"

लाजवन्ती ने अकुलाकर पूछा--"तो क्या यह झूठ है ?

"बिलकुल झूठ भी नहीं। उसने दो सौ रुपये के गहने बनवा दिये हैं; मगर मिठाई आदि का प्रबन्ध नहीं किया। अब चिंता यह है कि बारात आयेगी, तो उसके सामने क्या धरूँगी ? बाराती मिठाई

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

माँगेंगे, पूरियाँ मागेंगे, हलवा मागेंगे। यहाँ सूखे सत्तू खिलाने की भी हिम्मत नहीं। यही सोच-सोचकर सूखती जाती हूँ।"

लाजवन्ती ने कुछ सोचकर उत्तर दिया—"क्या गाँव के लोग एक निर्धन ब्राह्मणी की कन्या का ब्याह नहीं कर सकते? और वह उनकी दया न होगी, धर्म होगा।"

हरो की आँखें भर आईं। वह इस समय निर्धन थी, परन्तु कभी उसने अच्छे दिन भी देखे थे। लाजवन्ती के प्रस्ताव से उसे अत्यंत दुःख हुआ, जैसे नया-नया भिखारी गालियाँ सुन कर पृथ्वी में गड़ जाता है। उसने धीरे से कहा—"बेटी! यह अपमान न देखा जायगा।"

"परन्तु इस तरह तो गाँव-भर की नाक कट जायगी।"

हरो ने बात काटकर कहा—"मैं भी तो इसे सहन नहीं कर सकूंगी। किसी के सामने हाथ फैलाना बुरा है।"

"तो क्या करोगी? कन्या कुँवारी रक्खोगी?"

"भगवान की यही इच्छा है, तो मेरा क्या बस है? कहीं निकल जाऊँगी। न कोई देखेगा न बात करेगा।"

लाजवन्ती ब्राह्मणी की करुणा-जनक अवस्था देखकर काँप गई। उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे कोई कह रहा है कि अगर यह हो गया, तो ईश्वर का कोप गाँव भर को जलाकर खाक कर देगा। लाजवन्ती अपने आपको भूल गई। उसका हृदय दुःख से पानी-पानी हो गया! उसने जोश से कहा—"चिन्ता न करो, तुम्हारा यह संकट मैं दूर कर दूँगी। तेरी बेटी का ब्याह होगा, और बारात के लोगों को मिठाई मिलेगी। तेरी बेटी तेरी ही नहीं है, मेरी भी है।"

हरो ने वह सुना, जिसकी उसे इच्छा थी, परन्तु आशा न थी। उसके नेत्रों में कृतज्ञता के आँसू छलकने लगे। लाजवन्ती तीर्थ-यात्रा के लिये अधीर हो रही थी। वह सोचती थी—हरद्वार, मथुरा, वृन्दावन

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

के मन्दिरों को देखकर हृदय कली की तरह खिल जायगा। मगर जो आनंद उसे इस समय प्राप्त हुआ, वह उस कल्पित आनंद की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़-चढ़कर था। वह दौड़ती हुई अपने घर गई, और संदूक से दो सौ रुपये लाकर हरो के सामने ढेर कर दिये। यह रुपये जमा करते समय वह प्रसन्न हुई थी, पर उन्हें देते समय उससे भी अधिक प्रसन्न हुई। जो सुख त्याग में है, वह ग्रहण में कहाँ!

—५—

लाजवन्ती के तीर्थयात्रा का विचार छोड़ देने पर सारे गाँव में आग-सी लग गई। लोग कहते थे लाजवन्ती ने बहुत बुरा किया। देवी माता का क्रोध उसे नष्ट कर देगा। स्त्रियाँ कहती थीं--किस शेखी पर रात को रतजगा किया था! साठ-सत्तर रुपये खर्च हो गये, अब घर में बैठ गई है। नहीं जाना था, तो इस दिखाव की क्या आवश्यकता थी! कोई कहती थी--देवी-देवताओं के साथ यह हँसी मजाक अच्छी नहीं। ले-देकर एक लड़का है, उसकी खैर मनाये। जो बूढ़ी थीं, वे माला की गुरियाँ फेरते-फेरते बोलीं--कलयुग का पहरा है, जो न हो जाय, सो थोड़ा! ऐसा तो आज तक नहीं सुना था! आज तक सुनते थे, आदमी आदमी से बात करके बदल जाते हैं। अब देवताओं से बात करके भी बदलने लगे। पर असली भेद का किसी को भी पता न था। धीरे-धीरे यह बात लाजवन्ती के कानों तक भी जा पहुँची। पहले तो उसने उनकी कुछ परवाह नहीं की, एक कान से सुना, दूसरे कान से निकाल दिया। परन्तु जब सब ओर यही चर्चा और यही बात सुनी, तो उसका चित्त भी डाँवाडोल होने लगा। हवा ने झक्कड़ का रूप धारण कर लिया था। अब मुसाफिर घबराने लगा, अब उसका मन डोलने लगा।

लाजवन्ती सोचती थी--मैंने बुरा क्या किया? एक गरीब ब्राह्मणी की बेटी के विवाह में सहायता देना क्या देवी को पसन्द नहीं? और मैंने तीर्थयात्रा का विचार छोड़ नहीं दिया, केवल कुछ काल के लिये स्थगित

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

किया है। इस पर देवी-देवता गुस्से क्यों होने लगे ? मगर दूसरा विचार उठता कि मैंने सचमुच भूल की। देवी-देवताओं की भेंट किसी आदमी को देना अपराध नहीं, तो और क्या है ? यह विचार आते ही उसका कलेजा काँप जाता और हेम के विषय में भयानक संशय उत्पन्न होने लग जाते। संसार बुराइयों पर पछताता है, लाजवन्ती भलाई पर पछता रही थी। दिन का चैन उड़ गया, रात की नींद हराम हो गई। उसे वहम हो गया कि अब हेम की कुशल नहीं। उसे खेलता देखती, तो उसके हृदय पर कटारियाँ चल जाती थीं। बुरे-बुरे विचार आते थे। जी डरता था, हिम्मत काँपती थी।

इसी तरह कई दिन बीत गये। गाँव में चहल-पहल दिखाई देने लगी। हलवाई की दूकान पर मिठाइयाँ तैयार होने लगीं। गाँव की कुवाँरी कन्याओं के हाथों में मेंहदी रची हुई थी। रात के बारह-बारह बजे तक हरो की छत पर ढोलक बजती रहती, और स्त्रियों के दिहाती गीतों से सारा गाँव गूँजता रहता। एक वह दिन था जब लाजवन्ती प्रसन्न थी और हरो दुःखी थी। आज हरो के यहाँ चहल-पहल थी, मगर लाजवन्ती के यहाँ उदासी बरस रही थी। समय के फेर ने कायापलट कर दी थी।

रात का समय था, मन्दिर में घण्टे बज रहे थे। लाजवन्ती ने आरती का थाल उठाया और पूजा के लिये चली। मगर दरवाजे पर पहुँच कर पाँव रुक गये। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानों देवी की मूर्ति उसे दण्ड देने के लिये नेत्र लाल किये खड़ी है। लाजवन्ती का कलेजा धड़कने लगा। वह डरकर दरवाजे पर बैठ गई और रोने लगी। जिस प्रकार दुर्बल विद्यार्थी को परीक्षा के कमरे में जाने का साहस नहीं होता। पाँव आगे रखता है, दिल पीछे रह जाता है।

सहसा उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कोई प्रार्थना कर रहा था। लाजवन्ती का रोम-रोम कान बन गया। उसे निश्चय हो गया कि इस

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

प्रार्थना का अवश्य ही उसके साथ सम्बन्ध है, और वह गलती पर न थी। कोई कह रहा था—

"देवी माता! उसे सदा सुहागिन बनाओ। उसके बेटे को चिरंजीव रखो! उसने एक असहाय ब्राह्मणी का मान रक्खा है, तुम उसको इसका फल दो! उसके बेटे और पति का बाल भी बाँका न हो! यह एक बूढ़ी ब्राह्मणी की प्रार्थना है, इसे सुनो और स्वीकार करो। जिस तरह उसने मेरा कलेजा ठंडा किया है, उसी तरह उसका भी कलेजा ठंडा रखो।"

यह ब्राह्मणी हरो थी। लाजवन्ती के रोम-रोम में हर्ष की लहर दौड़ गई। उसके सारे संदेह धुएँ के बादलों की तरह तितर बितर हो गये। वह रोते हुए आगे बढ़ी, और बूढ़ी ब्राह्मणी के पैरों से लिपट गई।

रात को स्वप्न में वह फिर देवी के सम्मुख थी। एकाएक देवी की मूर्ति ने अपने सिंहासन से नीचे उतर कर लाजवन्ती को गले से लगा लिया, और कहा—'तूने एक गरीब की सेवा की है, गोया मेरी सेवा की है। मैं तुझसे खुश हूँ, तेरे काम से खुश हूँ। लोग तीर्थ यात्रा करते हैं, तूने महातीर्थ-यात्रा की है। सेवा तीर्थ यात्रा से बढ़कर है।"

लाजवन्ती की आँख खुल गई। इस समय उसे ऐसी प्रसन्नता प्राप्त हुई, जैसी आज तक कभी न हुई थी। आज उसने पूजा का रहस्य पा लिया था।

———

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पिंजरा

[श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क']

शान्ति ने ऊबकर कागज के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और उठ कर अनमनी-सी कमरे में घूमने लगी। उसका मन स्वस्थ नहीं था, लिखते-लिखते उसका ध्यान बट जाता था। केवल चार पक्तियाँ वह लिखना चाहती थी; पर वह जो कुछ लिखना चाहती थी, उससे लिखा न जाता था। भावावेश में कुछ का कुछ लिख जाती थी। छः पत्र वह फाड़ चुकी थी, यह सातवाँ था।

घूमते-घूमते, वह चुपचाप खिड़की में जा खड़ा हुई। सन्ध्या का सूरज दूर पश्चिम में डूब रहा था। माली ने क्यारियों में पानी छोड़ दिया था और दिन भर के मुरझाये फूल जैसे जीवनदान पाकर खिल उठे थे। हल्की-हल्की ठंडी हवा चलने लगी थी। शान्ति ने दूर सूरज की ओर निगाह दौड़ाई—पीली-पीली सुनहरी किरणें, जैसे डूबने से पहले उन छोटे-छोटे बच्चों के खेल में जी भर हिस्सा ले-लेना चाहती थीं, जो सामने के मैदान की हरी-भरी घास पर उन्मुक्त खेल रहे थे। सड़क पर दो कमीन युवतियाँ हँसती, चुहलें करतीं, उछलतीं, कूदतीं चली जा रही थीं। शान्ति ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और फिर मुड़कर उसने अपने ईद-गिर्द एक थकी हुई निगाह दौड़ाई—छत पर बड़ा पंखा धीमी आवाज से अनवरत चल रहा था। दरवाजों पर भारी पर्दे हिल रहे थे और भारी कोच और उन पर रखे हुए रेशमी गद्दे, गलीचे और दरम्यान में रखे हुए छोटे-छोटे अठकोने मेज और उन पर पीतल के नन्हें-नन्हें हाथी और फूलदान—और उसने अपने आपको उस पक्षी-सा महसूस किया, जो विशाल, स्वच्छन्द आकाश के नीचे, खुली स्वतंत्र हवा में आम की डाली में बंधे हुए पिंजरे में लटक

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

रहा हो।

तभी नौकर उसके छोटे लड़के को जैसे बरबस खींचता सा लाया। धोबी की लड़की के साथ खेल रहा था। आव देखा न ताव और शान्ति ने लड़के को पीट दिया—क्यों तू उन कमीनों के साथ खेलता है, क्यों खेलता है तू! इतने बड़े बाप का बेटा होकर! और उसकी आवाज चीख की हद को पहुँच गई। हैरान-से खड़े नौकर ने बढ़कर जबर्दस्ती बच्चे को छुड़ा लिया। शान्ति जाकर धम से कोच में धँस गई और उसकी आँखों में अनायास ही आँसू बह निकले!

\+ \+ \+

तब वहीं बैठे-बैठे उसकी आँखों के सामने अतीत के कई चित्र फिर गये!

\+ \+ \+

उसके पति तब लांडरी का काम करते थे। बाइबल सोसाइटी के सामने, जहाँ आज एक दन्दानसाज बड़े धड़ल्ले से लोगों के दाँत उखाड़ने में निमग्न रहते हैं, उनकी लांडरी थी। आय अच्छी थी; पर खर्च भी कम न था। ३५ रुपया तो दुकान का किराया ही देना पड़ता था। और फिर कपड़े धोने और इस्त्री करने के लिए जो तवेला ले रखा था, उसका किराया अलग था। इसके अतिरिक्त धोबियों को वेतन, कोयले मसाला और दूसरे पचड़े! इस सब खर्च की व्यवस्था के बाद जो थोड़ा-बहुत बचता था, उससे बड़ी कठिनाई के साथ घर का खर्च चलता था और घर उन्होंने दुकान के पीछे ही महीलाल स्ट्रीट में ले रखा था।

महीलाल स्ट्रीट जैसी अब है, वैसी ही तब भी थी। मकानों का रूप यद्यपि इन दस वर्षों में कुछ बदल गया है; किन्तु मकानों में कुछ अधिक अन्तर नहीं आया। अब भी इस इलाके में कमीन बसते हैं और तब भी वही बसते थे। सील-भरी अँधेरी कोठरियाँ चमारों, धीवरों

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

और शुद्ध हिन्दुओं का निवास स्थान थीं। एक ही कोठरी में रसोई, बैठक, शयनगृह—और वह भी ऐसा, जिसमें सास-ससुर, बेटा-बहू, लड़कियाँ-लड़के, सब एक साथ सोते हों।

जिस मकान में शान्ति रहती थी; उसके नीचे टेंडी चमार अपने आठ लड़के-लड़कियों के साथ रहता था। दूसरी चौड़ी गली में मारवाड़ी की दुकान थी और जिधर दरवाजा था, उधर भंगी रहते थे। उनके दरवाजे से जरा ही परे भंगियों ने तंदूर लगा रखा था, जिसका धुआँ सुबह-शाम उनकी रसोई में आ जाया करता था, जिससे शान्ति को प्रायः रसोई की खिड़की बन्द रखनी पड़ती थी। दिन-रात वहाँ चारपाइयाँ बिछी रहती थीं और कपड़ा बचाकर निकलना प्रायः असम्भव होता था।

गर्मियों के दिन थे और स्यूनिसिपैलिटी का नल काफी दूर अनारकली के पास था; इस लिए इन गरीब लोगों की सहूलियत के खयाल से शान्ति ने अपने पति की सिफारिश पर नीचे डेवढ़ी के नल से उन्हें पानी लेने की इजाजत दे दी थी; किन्तु जब उन्हें उस मकान में आये कुछ दिन बीते, तो शान्ति को मालूम हो गया कि यह उदारता बड़ी मंहगी पड़ेगी। एक दिन जब उसके पति नहाने के बाद साबुन की डिबिया नीचे ही भूल आये और शान्ति उसे उठाने गई, तो उसने उसको नदारत पाया। फिर कुछ दिन बाद तौलिया गायब हो गया, और इसी तरह दूसरे तीसरे कोई-न-कोई चीज गुम होने लगी। हारकर एक दिन शान्ति ने अपने पति के पीछे पड़कर नल की टोंटी पर लकड़ी का छोटा सा बक्स लगवा दिया और चाबी उसकी अपने पास रख ली।

दूसरे दिन, जब एक ही धोती से शरीर ढांपे वह पसीने से निचुड़ती हुई, चुल्हे के आगे बैठी रोटी की व्यवस्था कर रही थी, तब उसने अपने सामने एक काली-सी लड़की को खड़ी पाया।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

लड़की उसकी समवयस्क ही थी। रंग उसका बेहद काला था और शरीर पर उसने अत्यन्त मैली-कुचैली धोती और बन्डी पहन रखी थी। वह अपने गहरे काले बालों में सरसों का ही तेल डालती होगी; क्योंकि उसके मस्तक पर बालों के नीचे पसीने के कारण तेल में मिली हुई मैल की एक रेखा बन रही थी। चौड़ा-सा मुँह और चपटी-सी नाक! शान्ति के हृदय में क्रोध और घृणा का तूफान उमड़ आया। आज तक घर में जमादारिन के अतिरिक्त नीचे रहनेवाली किसी कमीन लड़की को ऊपर आने का साहस न हुआ था और न स्वयं ही उसने किसी से बातचीत करने की कोशिश की थी।

लड़की मुस्करा रही थी, और उसकी आँखों में विचित्र-सी चमक थी।

"क्या बात है?"—जैसे आँखों-ही-आँखों में शान्ति ने क्रोध से पूछा।

तनिक मुस्कराते हुए लड़की ने प्रार्थना की—बीबीजी, पानी लेना है।

"हमारा नल भङ्गी-चमारों के लिये नहीं!"

"हम भङ्गी है न चमार!

"फिर कौन हो?"

"मैं बीबीजी, सामने के मन्दिर के पुजारी की लड़की"……..

लेकिन शान्ति ने आगे न सुना था। उसे लड़की से बातें करते-करते घिन आती थी। धोती के छोर से चाबी खोलकर उसने फेंक दी।

\+ + +

इस काले कलूटे शरीर में दिल काला न था। और शीघ्र ही शान्ति को इस बात का पता चल गया। रोज ही पानी लेने के वक्त चाबी के लिये गोमती आती। गली में पूर्वियों का जो मन्दिर था, वह उसके

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पुजारी की लड़की थी। अमीरों के मन्दिरों के पुजारी भी मोटरों में घूमते हैं। यह मन्दिर था गरीब पूर्बियों का, जिनमें प्राय: सब चौकीदार, चपरासी, साईस अथवा मज़दूर थे। पुजारी का कुटुम्ब भी खुली गली के एक ओर भङ्गियों की चारपाइयों के सामने सोता था। और जब रात को कोई ताँगा उधर गुज़रता, तो प्राय: किसी-न-किसी की चारपाई उसके साथ घिसटती हुई चली जाती। मन्दिर में कुंआ तो था; पर जब से इधर नल आया, उस पर डोल और रस्सी कभी ही रही, और फिर जब समीप हो किसी की डेवढ़ी के नल से पानी मिल जाय तो कुएँ पर बाजू तोड़ने की क्या जरूरत है; इसलिये गोमती पानी लेने और कुछ पानी लेने के बहाने बातें करने रोज ही सुबह-शाम आ जाती। बटलोही नल के नीचे रखकर, जिसमें सदैव पान के कुछ पत्ते तैरा करते, वह ऊपर चली आती और फिर बातों में भूल जाती कि वह पानी लेने आई और उस समय तक न उठती, जब तक उसकी बुढ़िया दादी गली में अपनी चारपाई पर बैठी हुई चीख-चीख कर गालियाँ देती हुई उसे न पुकारती।

इसका यह मतलब नहीं कि इस बीच में शान्ति और गोमती में मित्रता हो गई थी। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि शान्ति जब रसोई में खाना बनाती अथवा अन्दर कमरे में बैठी कपड़े सीती, तो उसको गोमती का सिढ़ियों में बैठकर बातें करते रहना बुरा नहीं लगता था। कई तरह की बातें होतीं—मुहल्ले के भंगियों की बातें, चमारों के घरेलू झगड़ों की बातें और फिर कुछ गोमती की निजी बातें। इस बीच में शान्ति को मालूम हो गया कि गोमती का विवाह हुए बर्षों बीत चुके हैं; पर उसने अपने पति की सूरत नहीं देखी। बेकार है, इस लिये न वह उसे लेने आता है और न उसके पिता उसे उसके साथ भेजते हैं।

कई बार छोड़ने की गर्ज से, या कई बार मात्र आनन्द लेने की गर्ज

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

से ही शान्ति उससे उसके पति के सम्बन्ध में और उसके अपने मनोभावों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछती। उत्तर देते समय गोमती शर्मा जाती थी।

किन्तु इतना सब होते हुए भी उसकी जगह वहीं सिढ़ियों में ही बनी रही।

× × × ×

फिर किस प्रकार पुजारी की वह काली-कलूटी लड़की वहाँ से उठकर, उसके इतने समीप आ गई कि शान्ति ने एक बार अनायास उसे आलिंगन में लेकर कह दिया—आज से तुम मेरी बहिन हुई गोमती ! वह सब आज भी शान्ति को स्मरण था।

× × × ×

सर्दियों की रात थी और अनारकली में सब ओर धुआँ-धुआँ हो रहा था। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे लाहौर के समस्त तंदूरों, होटलों, घरों और कारखानों से सारे दिन उठनेवाले धुएँ ने सांझ होते ही इकट्ठे होकर अनारकली पर आक्रमण कर दिया हो। शान्ति अपने नन्हें को कन्धे से लगाये, हाथों में कुछ हल्के-हल्के लिफाफे थामे, क्रय-विक्रय करके चली आ रही थी। वह कई दिन के अनुरोध के बाद अपने पति को इधर ला सकी और उन्होंने जी-भर खाया-पीया और सामान खरीद किया था। अनारकली के मध्य बंगाली रसगुल्लों की जो दुकान है, वहाँ से रसगुल्ले खाने को शान्ति का बड़ा मन होता था; पर उसके पति को कभी इतनी फुर्सत ही न हुई थी कि वहाँ तक सिर्फ रसगुल्ले खाने के लिए जा सकें। अस्पताल रोड के सिरे पर हलवाई के साथ चाटवाले की जो दुकान है, वहाँ से चाट खाने को शान्ति की बड़ी इच्छा थी; पर चाट ऐसी निकम्मी चीज खाने के लिए काम छोड़ कर जाने का अवकाश शान्ति के पति के पास कहाँ ? कई दिनों से वह अपने उम्मी के लिए कुछ गर्म कपड़ों के टुकड़े खरीदना चाहती थी। सर्दी बढ़ रही थी और उसके पास एक भी कोट न था। और फिर गर्म कपड़ा न सही,

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

वह चाहती थी कि कुछ ऊन ही मोल ले ली जाय, ताकि नन्हें का स्वेटर बुन दिया जाय. । पर उसके पति "हूँ" "हाँ" करके टाल जाते थे; किन्तु उस दिन वह निरन्तर महीने-भर तक अनुरोध करने के बाद उन्हें अपने साथ अनारकली ले जाने में सफल हुई थी। और उस दिन उन्होंने जी-भर बंगाली के रसगुल्ले और चाटवाले की चटपटी चाट खाई थी; बल्कि घलुए में मोहन के पकौड़े और मटरों वाले आलुओं के स्वाद भी चखे थे। फिर उम्मी के लिए कपड़ा भी खरीदा था और ऊन भी मोल ली थी और दो आने दर्जन वाली गुड-वोग ब्लेडों की डिबिया तथा एक कालगेट साबुन की दो आने वाली टिकिया उसके पति ने भी खरीदी थी। कई दिनों से वे उन्हीं पुराने ब्लेडों को शीशे के ग्लास में तेज करके नहानेवाले साबुन ही से हजामत बनाते आ रहे थे और उस दिन शान्ति ने यह सब खरीदने के लिए उन्हें विवश कर दिया था। और दोनों जने यह सब खरीदकर-खर्च करने के आनन्द की अनुभूति से पुलकित चले आ रहे थे।

दिसम्बर का महीना था और सूखा जाड़ा पड़ रहा था। शान्ति ने अपने सस्ते, पर गर्म शाल को नन्हें के गिर्द और अच्छी तरह लपेटते हुए अचानक कहा—निगोड़ा सूखा जाड़ा पड़ रहा है। सुनती हूँ, नगर में बीमारी फैल रही है।

पर उसके पति चुपचाप धुएँ के कारण कड़वी हो जानेवाली अपनी आँखों को रूमाल से मलते चले आ रहे थे।

शान्ति ने फिर कहा—हमारी अपनी गली में कई लोग बीमार हो गये हैं। परसों टेंडी चमार का लड़का निमोनिया से मर गया।

तभी शाल में लिपटा-लिपटा बच्चा हल्के-हल्के दो बार खाँसा और शान्ति ने उसे और भी अच्छी तरह शाल में लपेट लिया।

उसकी बात को सुनी-अनसुनी करके उसके पति ने कहा—आज बेहद बदपरहेजी की है, पेट में सख्त गड़बड़ी हो रही है।

× × ×

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

घर आकर शान्ति ने जब लड़के को चारपाई पर लिटाया और मस्तक पर हाथ फेरते हुये उसके बालों को पिछली तरफ किया, तो वह चौंककर पीछे हटी। उसने डरी हुई निगाहों से अपने पति की ओर देखा। वे सिर को हाथों में दबाये नाली पर बैठे थे।

"उम्मी का माथा तो तवे की तरह तप रहा है"--उसने बड़ी कठिनाई से गले को अचानक अवरुद्ध कर देने वाली किसी चीज को बरबस रोक कर कहा।

लेकिन उसके पति को कै हुई।

शान्ति का कण्ठ अवरुद्ध-सा होने लगा था और उसकी आँखें भर-सी आई थीं; पर अपने पति को कै करते देख बच्चे का खयाल छोड़ वह उनकी ओर भागी। पानी लाकर उनको कुल्ला कराया। निढाल-से होकर वे चारपाई पर पड़ गये; पर कुछ ही क्षण बाद उन्हें फिर मचली हुई।

शान्ति के हाथ पाँव फूल गये। घर में वह अकेली। सास भी पास नहीं, कोई दूसरा नाता-रिश्ता भी समीप नहीं और नौकर—नौकर रखने की गुन्जाइश ही कभी नहीं निकली। वह कुछ क्षण के लिये घबरा गई। एक उड़ी-उड़ी सी दृष्टि उसने अपने ज्वर से तपते हुए बच्चे और बद-हजमी से निढाल पति पर डाली। अचानक उसे गोमती का ख्याल आया। शान्ति अकेली कभी गली में नहीं उतरी थी; पर सब संकोच छोड़ वह भागी-भागी नीचे गई। अपनी कोठरी के बाहर, गली की ओर, मात्र ईंटों के छोटे से पर्दे की ओट से बने हुए, रसोई घर में बैठी गोमती रोटी बेल रही थी और चूल्हे की आग से उसका काला मुख चमक-सा रहा था। शान्ति ने देखा—उसका बड़ा भाई अभी खाना खा कर उठा है। तब आगे बढ़कर उसने इशारे से गोमती को बुलाया। तवे को नीचे उतार और लकड़ी को बाहर खींचकर गोमती उसी तरह

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

भागी आई। तब विनीत भाव से संक्षेप में शान्ति ने अपने पति तथा बच्चे की हालत का उल्लेख किया और फिर प्रार्थना की कि वह अपने भाई से कहकर तत्काल किसी डाक्टर को बुला दे। उनकी लांडरी के साथ ही जिस डाक्टर की दुकान है, वह सुना है, पास ही लाज रोड पर रहता है। यदि वह आ जाय, तो बहुत ही अच्छा हो। और फिर साड़ी के छोर से पाँच रुपये का एक नोट खोल शान्ति ने गोमती के हाथ में रख दिया कि फीस चाहे पहले ही क्यों न देनी पड़े; पर डॉक्टर को ले अवश्य आयें। और फिर चलते-चलते उसने यह भी प्रार्थना की कि रोटी पकाकर सम्भव हो तो तुम ही जरा आ जाना, उम्मी ....।

शान्ति का गला भर आया था। गोमती ने कहा था—आप घबरायें नहीं, मैं अभी भाई को भेज देती हूँ और मैं भी अभी आई और यह कहकर वह भागती-सी चली गई थी।

शान्ति वापस मुड़ी, तो सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते उसने महसूस किया कि शंका और भय से उसके पाँव काँप रहे हैं और उसका दिल धक-धक कर रहा है।

ऊपर जाकर उसने देखा—उसके पति ऊपर से उतर रहे हैं। हाथ में उनके खाली लोटा है, चेहरा पहले से भी पीला हो गया है, और माथे से पसीना छूट रहा है।

शान्ति के उड़े हुए चेहरे को देखकर उन्होंने हँसने का प्रयत्न करते हुए कहा—घबराओ नहीं, सर्दियों में हैजा नहीं होता।

शान्ति ने रोते हुए कहा—आप ऊपर क्यों गये, वहीं नाली पर बैठ जाते; किन्तु जब पति ने नाली की ओर, और फिर चारपाई पर पड़े हुए बीमार बच्चे की ओर इशारा किया, तो शान्ति चुप हो गई। उसने पहले सहारा देकर पति को बिस्तर पर लिटाया फिर नाली पर पानी डाला, फिर दूसरे कमरे में बिस्तर बिछा, बच्चे को उस पर लिटा आई। तभी गोमती आ गई। खाना तो सब

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

खा चुके थे, अपने हिस्से का आटा उठा, आग बुझा, वह भाग आई थी।

शान्ति ने कहा—मैं उम्मी को उधर कमरे में लिटा आई हूँ। मुझे डर है उसे सर्दी लग गई है, साँस उसे और भी कठिनाई से आने लगी है और खाँसी भी बढ़ गई है। निचली कोठरी में पड़े हुए पुराने लिहाफ से कपड़े ले लो और अँगीठी में कोयले डाल उसकी छाती पर जरा सेंक दो। इनके पेट में गड़बड़ है। मैं इधर इनका उपचार करती हूँ! कुछ नहीं तो गर्म पानी करके बोतल ही फेरती हूँ।

गोमती ने कहा—इन्हें बीबीजी कोई हाजमे की चीज दो! हमारे घर तुम्बे की अजवाइन है। मैं उसमें से कुछ लेती आई हूँ, जब तक डॉक्टर आये, उसे ही जरा गर्म पानी से इन्हें दे दो।

बिना किसी तरह की हिचकिचाहट के शान्ति ने मैली-सी पुड़िया में बँधी काली-सी अजवाइन ले ली थी और गोमती अँगीठी में कोयले डाल नीचे कपड़े लेने भाग गई थी।

× × × ×

बाहर शाम बढ़ चली थी। वहीं कमरे के अंधेरे में बैठे-बैठे शान्ति की आँखों के आगे चिन्ता और फिक्र के वे सब दिन-रात फिर गये। उसके पति को हैजा तो न था; किन्तु गैस्ट्री ऐन्टिराइटिस ('Gostro enteritis) तीव्र किस्म का था। डॉक्टर के आने तक शान्ति ने गोमती के कहने पर उन्हें तुम्बे की अजवाइन दी थी, प्याज भी सुंघाया था और गोमती अँगीठी उठाकर दूसरे कमरे में बच्चे की छाती पर सेंक देने [illegible]ली गई थी। डॉक्टर के आने पर मालूम हो गया था कि उसे निमोनिया हो गया है और अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

शान्ति अपने पति और अपने बच्चे दोनों की एक साथ कैसे तीमारदारी करती. उसने अपनी विवशता से गोमती की ओर देखा था; पर उसे होंठ हिलाने की ज़रूरत न पड़ी थी, बच्चे की सेवा-सुश्रूषा का समस्त भार गोमती ने अपने कन्धों पर ले लिया था। शान्ति को मालूम भी न. हुआ था कि वह कब घर जाती है, कब घरवालों को खाना खिलाती है या खाती है, या खिलाती-खाती भी है या नहीं। उसने तो जब देखा, उसे छाया की भाँति बच्चे के पास पाया। कई दिन तक एक ही जून खाकर गोमती ने बच्चे की तीमारदारी की थी।

× × × ×

दोपहर का समय था, उसके पति दूकान पर गये हुए थे। उम्मी को भी अब आराम था और वह उसकी गोद से लगा सोया पड़ा था और उसके पास ही फर्श पर टाट बिछाये, गोमती पुराने ऊन के धागों में स्वेटर बुनना सीख रही थी। इतने दिनों की थकी-हारी उनींदी शान्ति की पलकें धीरे-धीरे बन्द हो रही थीं, वह उन्हें खोलती थी; पर वे फिर बन्द हो जाती थीं। आखिर वह वैसे ही पड़ी-पड़ी सो गई थी। जब वह फिर उठी तो उसने देखा—उम्मी रो रहा है, और गोमती उसे बड़े प्यार से सुरीली आवाज में थपक-थपक-कर लोरी दे रही है। शान्ति ने फिर आँखें बन्द कर लीं। उसने सुना गोमती धीमे-धीमें स्वर से गा रही थी—

आ री कक्को, जा री कक्को, जङ्गल पक्को बेर !
भय्या हाथे ढेला, चिड़ैया उड़े जा !

और फिर—

आ री चिड़ैया ! दो पप्पड़ा पकाए जा !
भय्या हाथे ढेला, चिड़ैया उड़े जा !

बच्चा चुप कर गया था। लोरी खत्म करके उसने बच्चे को

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

गले से लगाकर चूम लिया। शान्ति ने अर्ध-निमीलित आँखों से देखा, बच्चे के पीले जर्द सूखे मुख पर गोमती का काला स्वस्थ मुख झुका हुआ है। सुख के आँसू उसकी आँखों में उमड़ आये। उसनें उठकर गोमती से बच्चे को ले लिया था और जब वह फिर टाट पर बैठने लगी थी, तो दूसरे हाथ से शान्ति ने उसका हाथ पकड़ चारपाई पर बिठाते हुए, उसे अपने बाजू से बाँध लिया था और कहा था—आज से तुम मेरी बहिन हुईं गोमती !

× × × ×

आँखें बन्द किये शान्ति इन्हीं स्मृतियों में गुम थी, उसकी आँखों से चुपचाप आँसू बह रहे थे कि अचानक उसके पति अन्दर दाखिल हुए। किसी जमाने में लांडरी चलानेवाले और समय पड़ने पर, स्वयं अपने हाथ से इस्त्री गर्म करके कपड़ों को प्रेस करने में भी हिचकिचाहट न महसूस करने वाले ला० दीनदयाल और लाहौर की प्रसिद्ध फर्म 'दीनदयाल एण्ड सन्स' के मालिक प्रख्यात शेयर ब्रोकर लाला दीनदयाल में महान अन्तर था। इस दश वर्ष के अर्से में उनके बाल यद्यपि पक गये थे; किन्तु शरीर कहीं अधिक स्थूल हो गया था। ढीले-ढाले और प्राय: लांडरी के मालिक होते हुए भी मैले कपड़े पहनने की जगह अब उन्होंने अत्यन्त बढ़िया किस्म का रेशमी सूट पहन रखा था और पांवों में श्वेत रेशमी जुरावें तथा काले हल्के सेंडल पहने हुए थे।

शान्ति ने झट रूमाल से आँखें पोंछ लीं।

बिजली का बटन दबाते हुए उन्होंने कहा—यहाँ अँधेरे में क्या पड़ी हो, उठो बाहर बाग में घूमो-फिरो और फिर बोले—इन्द्रानी का फोन आया था कि बहिन यदि चाहें तो आज सिनेमा देखा जाय।

"बहिन"—दिल-ही-दिल में विषाद से शान्ति मुस्कराई और उसके

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सामने एक ओर काली-कलूटी सी लड़की का चित्र खिंच गया, जिसे उसने कभी बहिन कहा था; किन्तु प्रकट में उसने सिर्फ इतना कहा—मेरी तबीयत ठीक नहीं।

मुँह फुलाए हुए ला० दीनदलाल बाहर चले गये।

तब आँखों को फिर एक बार पोंछ कर और तनिक स्वस्थ होकर, शान्ति मेज के पास आई और कुर्सी पर बैठ, पैड अपनी ओर को खिसका, कलम उठाकर उसने लिखा।

"बहिन गोमती,

तुम्हारी बहिन अब बड़ी बन गई है। बड़े आदमी की बीवी है। बड़े आदमियों की बीबियाँ अब उसकी बहिनें हैं। पिंजरे में बंद पत्ती को कब इजाजत होती है कि स्वच्छन्द, स्वतन्त्र बिहार करने वाले अपने हमजोलियों से मिले? मैंने तुम्हें कल फिर आने के लिए कहा था; पर अब तुम कल न आना। अपनी इस बन्दिनी बहिन को भूलने की कोशिश करना।

—शान्ति"

इस बार उसने एक पंक्ति भी नहीं काटी और न कागज ही फाड़ा। हाँ, एक बार लिखते-लिखते फिर आँखें भर आने से जो एक-दो आंसुओं की बूँदें पत्र पर अनायास ही गिर पड़ी थीं, उन्हें उसने ब्लाटिंग पेपर से सुखा दिया था। फिर पत्र लिफाफे में बन्द करके उसने नौकर को आवाज दी और उसके हाथ में लिफाफा देकर कहा कि महीलाल स्ट्रीट में पूर्वियों के मन्दिर के पुजारी की लाड़ली गोमती को दे आये। फिर समझाते हुए कहा—गोमती, कुछ ही दिन हुए अपनी ससुराल से आई है।

पत्र लेकर नौकर चला ही था कि शान्ति ने उसे फिर आवाज दी और पत्र उसके हाथ से लेकर फाड़ डाला। फिर धीरे से उसने कहा—तुम गोमती से कहना कि बीबी अचानक आज मैके जा रही हैं और दो

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

महीने तक वापस न लौटेंगी।

यह कह कर वह फिर खिड़की में जा खड़ी हुई और अस्त हो जाने वाले सूरज के स्थान पर ऊपर की ओर बढ़ते हुए अँधेरे को देखने लगी।

× × × ×

बात इतनी ही थी आज दोपहर को जब वे ब्रिज खेल रहे थे, तब नौकर ने आकर खबर दी थी कि महीलाल स्ट्रीट के पुजारी की लड़की गोमती आई है। तब खेल को बीच ही में छोड़कर, और भूलकर कि उसके पार्टनर राय साहब लाला बिहारीलाल हैं, वह भाग गई थी। उसने गोमती को अपनी भुजाओं में भींच लिया था और फिर वह उसे अपने कमरे में ले गई थी, तब दोनों बहुत देर तक अपने दुःख-सुख की बातें करती रही थीं। शान्ति ने जाना था कि किस प्रकार गोमती का पति काम करने लगा, उसे ले गया और चार बच्चों की माँ बना दिया और गोमती ने उम्मी का और दूसरे बच्चों का हाल पूछा था। ला० दीनदयाल इस बीच में कई बार बुलाने आये थे; पर वह न गई थी और जब दूसरे दिन आने का वादा लेकर उसने गोमती को विदा किया था, तो उसके पति ने कहा था—तुम्हें शर्म नहीं आती, उस उजड्ड और गँवार औरत को लेकर तुम बैठ रहीं, तुम्हें मेरी इज्जत का जरा भी खयाल नहीं। उसे बगल में लिये उन सब के सामने गुजर गईं। राय साहब और उनकी पत्नी हँसने लगे और आखिर प्रतीक्षा कर-करके चले गये........

इसके बाद उन्होंने और भी बहुत कुछ कहा था; लेकिन शान्ति ने तो फैसला कर लिया था कि वह पिंजरे को पिंजरा ही समझेगी और उड़ने का प्रयास न करेगी।

———

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

बड़े घर की बेटी

[श्री प्रेमचन्द]

बेनीमाधव सिंह गौरीपुर-गाँव के ज़मींदार और नम्बरदार थे। उनके पितामह किसी समय बड़े धन-धान्य-संपन्न थे। गाँव का पक्का तालाब और मन्दिर, जिनकी अब मरम्मत भी मुश्किल थी, उन्हीं के कीर्ति-स्तंभ थे। कहते हैं, इस दरवाजे पर हाथी झूमता था, अब उसकी जगह एक बूढ़ी भैंस थी, जिसके शरीर में अस्थि-पंजर के सिवा और कुछ शेष न रहा था; पर दूध शायद बहुत देती थी; क्योंकि एक-न-एक आदमी हाँड़ी लिये उसके सिर पर सवार ही रहता था। बेनीमाधव सिंह अपनी आधी से अधिक संपत्ति वकीलों की भेंट कर चुके थे। उनकी वर्तमान आय एक हजार रुपये वार्षिक से अधिक न थी। ठाकुर साहब के दो बेटे थे। बड़े का नाम श्री कंठसिंह था। उसने बहुत दिनों के परिश्रम और उद्योग के वाद बी० ए० की डिग्री प्राप्त की थी। अब एक दफ्तर में नौकर था। छोटा लड़का लालबिहारी सिंह दोहरे बदन का, सजीला जवान था। भरा हुआ मुखड़ा, चौड़ी छाती। भैंस का दो सेर ताजा दूध, वह उठकर सबेरे पी जाता था। श्रीकंठसिंह की दशा बिलकुल विपरीत थी। इन नेत्रप्रिय गुणों को उन्होंने बी० ए०—उन्हीं दो अक्षरों पर न्योछावर कर दिया था। इन दो अक्षरों ने उनके शरीर को निर्बल और चेहरे को कांतिहीन बना दिया था। इसी से वैद्यक ग्रंथों पर उनका विशेष प्रेम था। आयुर्वेदिक औषधियों पर उनका अधिक विश्वास था। शाम-सबेरे उनके कमरे से प्रायः खरल की सुरीली कर्ण-मधुर ध्वनि सुनायी दिया करती थी। लाहौर और कलकत्ते के वैद्यों से बड़ी लिखा-पढ़ी रहती थी।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

श्रीकंठ इस अँगरेजी डिग्री के अधिपति होने पर भी अँगरेजी सामाजिक प्रथाओं के विशेष प्रेमी न थे; बल्कि वह बहुधा बड़े जोर से उनकी निन्दा और तिरस्कार किया करते थे। इसी से गाँव में उनका बड़ा सम्मान था। दशहरे के दिनों में वह बड़े उत्साह से रामलीला में सम्मिलित होते और स्वयं किसी-न-किसी पात्र का पार्ट लेते थे। गौरीपुर में रामलीला के वही जन्मदाता थे। प्राचीन हिंदू सभ्यता का गुण-गान उनकी धार्मिकता का प्रधान अंग था। उसके तो वह एक मात्र उपासक थे। आजकल स्त्रियों की कुटुम्ब में मिल-जुल कर रहने की जो अरुचि होती है, उसे वह जाति और देश दोनों के लिए हानिकारक समझते थे। यही कारण था कि गाँव की ललनाएँ उनकी निन्दक थीं। कोई-कोई तो उन्हें अपना शत्रु समझने में भी संकोच न करती थीं। स्वयं उनकी पत्नी को ही इस विषय में उनसे विरोध था ! यह इसलिए नहीं कि उसे अपनी सास-ससुर, देवर या जेठ आदि से घृणा थी; बल्कि उसका विचार था कि यदि बहुत कुछ सहने और तरह देने पर भी परिवार के साथ निर्वाह न हो सके, तो आये दिन की कलह से जीवन को नष्ट करने की अपेक्षा यही उत्तम है कि अपनी खिचड़ी अलग पकाई जाय।

आनन्दी एक बड़े उच्च कुल की लड़की थी। उसके बाप एक छोटी-रियासत के ताल्लुकेदार थे। विशाल-भवन, एक हाथी, तीन कुत्ते, बाज-बहरी-शिकरे, झाड़-फानूस, आनरेरी मजिस्ट्रेटी और ऋण जो एक प्रतिष्ठित ताल्लुकेदार के योग्य पदार्थ हैं, सभी यहाँ विद्यमान थे। नाम था भूपसिंह। बड़े उदारचित्त और प्रतिभाशाली पुरुष थे; पर दुर्भाग्य से लड़का एक भी न था। सात लड़कियाँ हुईं और दैवयोग से सब-की-सब जीवित रहीं। पहली उमंग में तो उन्होंने तीन ब्याह दिल खोलकर किये; पर जब पन्द्रह-बीस हज़ार रुपयों का कर्ज सिर पर हो गया, तो आखें खुलीं, हाथ समेट लिया। आनन्दी चौथी लड़की थी।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

वह अपनी सब बहनों से अधिक रूपवती और गुणवती थी। इससे ठाकुर भूपसिंह उसे बहुत प्यार करते थे। सुन्दर संतान को कदाचित उसके माता-पिता भी अधिक चाहते हैं। ठाकुर साहब बड़े धर्म संकट में थे कि इसका विवाह कहाँ करें। न तो यही चाहते थे कि ऋण का बोझ बढ़े और न यही स्वीकार था कि उसे अपने को भाग्य-हीन समझना पड़े। एक दिन श्रीकण्ठ उनके पास किसी चन्दे का रुपया माँगने आये। शायद नागरी-प्रचार का चन्दा था। भूपसिंह उनके स्वभाव पर रीझ गये और धूम-धाम से श्रीकण्ठसिंह का आनन्दी के साथ ब्याह हो गया।

आनन्दी अपने नये घर में आयी, तो यहाँ का रंग-ढंग कुछ और ही देखा। जिस टीम-टाम की उसे बचपन से ही आदत पड़ी हुई थी, वह यहाँ नाम मात्र को भी न थी! हाथी, घोड़ों का तो कहना ही क्या, कोई सजी हुई सुन्दर बहेली तक न थी। रेशमी स्लीपर साथ लाई थी; पर यहाँ बाग कहाँ। मकान में खिड़कियाँ तक न थीं, न जमीन पर फर्श, न दीवार पर तस्वीरें। यह एक सीधा-सादा गृहस्थ का मकान था; किन्तु आनन्दी ने थोड़े ही दिनों में अपने को इस नई अवस्था के ऐसा अनुकूल बना लिया, मानो उसने विलास के सामान कभी देखे ही न थे।

—२—

एक दिन दोपहर के समय लालबिहारी सिंह दो चिड़िया लिये हुए आया और भावज से बोला—जल्दी से पका दो, मुझे भूख लगी है। आनन्दी भोजन बनाकर इसकी राह देख रही थी। अब वह नया व्यञ्जन बनाने बैठी। हाँड़ी में देखा, तो घी पाव भर से अधिक न था। बड़े घर की बेटी, किफायत क्या जाने। उसने सब घी मांस में डाल दिया। लालबिहारी खाने बैठा, तो दाल में घी न था, बोला—दाल में घी क्यों नहीं छोड़ा।

आनन्दी ने कहा—घी सब मांस में पड़ गया। लालबिहारी जोर से बोला—अभी परसों घी आया है इतना जल्द उठ गया!

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

आनन्दी ने उत्तर दिया—आज तो कुल पाव-भर रहा होगा। वह सब मैंने मांस में डाल दिया।

जिस तरह सूखी लकड़ी जल्दी से जल उठती है, उसी तरह क्षुधा से बावला मनुष्य जरा-जरा-सी बात पर तिनक जाता है। लालबिहारी को भावज की यह ढिठाई बहुत बुरी मालूम हुई, तनककर बोला—मैके में तो चाहे घी की नदी बहती हो !

स्त्री गालियाँ सह लेती हैं, मार भी सह लेती हैं, पर मैके की निन्दा उनसे नहीं सही जाती। आनन्दी मुँह फेरकर बोली—हाथी मरा भी, तो नौ लाख का। वहाँ इतना घी नित्य नाई-कहार खा जाते हैं।

लालबिहारी जल गया, थाली उठाकर पटक दी, और बोला—जी चाहता है, जीभ पकड़कर खींच लूँ।

आनन्दी को भी क्रोध आ गया। मुँह लाल हो गया, बोली—वह होते, तो आज इसका मजा चखाते।

अब अपढ़, उजड्ड ठाकुर से न रहा गया। उसकी स्त्री एक साधारण जमींदार की बेटी थी। जब जी चाहता, उस पर हाथ साफ कर लिया करता था। उसने खड़ाऊँ उठाकर आनन्दी की ओर जोर से फेंकी, और बोला—जिसके गुमान पर भूली हुई हो, उसे भी देखूँगा और तुम्हें भी !

आनन्दी ने हाथ से खड़ाऊँ रोकी; सिर बच गया; पर उँगली में बड़ी चोट आई। क्रोध के मारे हवा से हिलते हुये पत्ते की भाँति काँपती हुई अपने कमरे में आकर खड़ी हो गई। स्त्री का बल और साहस, मान और मर्यादा पति तक है। उसे अपने पति के ही बल और पुरुषत्व का घमण्ड होता है। आनन्दी खून का घूँट पीकर रह गई।

—३—

श्रीकण्ठसिंह शनिवार को घर आया करते थे। वृहस्पति को यह घटना हुई थी। दो दिन तक आनन्दी कोपभवन में रही। न कुछ खाया,

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

न पिया, उनकी बाट देखती रही। अन्त में शनिवार को वह नियमानुकूल सन्ध्या समय घर आये और बाहर बैठ कर कुछ इधर-उधर की बातें, कुछ देश-काल सम्बन्धी समाचार तथा कुछ नये मुकदमों की चर्चा करने लगे। यह वार्तालाप दस बजे रात तक होता रहा। गाँव के भद्र पुरुषों को इन बातों में ऐसा आनन्द मिलता था, कि खाने-पीने की भी सुध न रहती थी। श्रीकण्ठ को पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो जाता था। ये दो-तीन घण्टे आनन्दी ने बड़े कष्ट से काटे। किसी तरह भोजन का समय आया। पंचायत उठी! जब एकान्त हुआ, तो लालबिहारी ने कहा—भैया आप जरा भाभी को समझा दीजियेगा कि मुँह सँभालकर बात-चीत किया करे, नहीं तो एक दिन अनर्थ हो जायगा।

बेनीमाधव सिंह ने बेटे की ओर साक्षी दी—हाँ, बहू-बेटियों का यह स्वभाव अच्छा नहीं, कि मर्दों के मुँह लगें।

लालबिहारी—वह बड़े घर की बेटी है, तो हम भी कोई कुर्मी-कहार नहीं हैं।

श्रीकण्ठ ने चिंतित स्वर से पूछा—आखिर बात क्या हुई?

लालबिहारी ने कहा—कुछ भी नहीं, यों ही आप-ही आप उलझ पड़ीं। मैके के सामने हम लोगों को तो कुछ समझती ही नहीं।

श्रीकण्ठ खा-पीकर आनन्दी के पास गये। वह भी बैठी थी। यह हजरत भी कुछ तीखे थे। आनन्दी ने पूछा—चित्त तो प्रसन्न है?

श्रीकण्ठ बोले—बहुत प्रसन्न है; पर तुमने आजकल घर में यह क्या उपद्रव मचा रखा है?

आनन्दी की तेवरियों पर बल पड़ गये, झुँझलाहट के मारे बदन में ज्वाला-सी दहक उठी। बोली—जिसने तुमसे यह आग लगायी है, उसे पाऊँ तो मुँह झुलस दूँ।

श्रीकण्ठ—इतनी गरम क्यों होती हो?

आनन्दी—क्या कहूँ, यह मेरे भाग्य का फेर है! नहीं तो एक गँवार

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

छोकरा, जिसको चपरासगिरी करने का भी शऊर नहीं, मुझे खड़ाऊँ से मारकर यों न अकड़ता।

श्रीकण्ठ—सब साफ-साफ हाल कहो, तो मालूम हो। मुझे तो कुछ पता नहीं।

आनन्दी—परसों तुम्हारे लाड़ले भाई ने मुझसे मांस पकाने को कहा। घी हांडी में पाव-भर से अधिक न था। वह सब मैंने मांस में डाल दिया। जब खाने बैठा, तो कहने लगा—दाल में घी क्यों नहीं है? बस,-इसी पर मेरे मैके को भला-बुरा कहने लगा—मुझसे न रहा गया। मैंने कहा कि वहाँ इतना घी तो नाई कहार खा जाते हैं, और किसी को जान भी नहीं पड़ता। बस, इतनी सी बात पर इस अन्यायी ने मुझ पर खड़ाऊँ फेंक मारी। यदि हाथ से न रोक लूँ, तो सिर फट जाय। उसी से पूछो, मैंने जो कुछ कहा है, वह सच है या झूठ।

श्रीकण्ठ की आँखें लाल हो गयीं। बोले—यहाँ तक हो गया। इस छोकरे का यह साहस!

आनन्दी स्त्रियों के स्वभावानुसार रोने लगी; क्यों कि आँसू उनकी पलकों पर रहते हैं। श्रीकण्ठ बड़े धैर्यवान् और शान्त पुरुष थे। उन्हें कदाचित ही कभी क्रोध आता था; पर स्त्रियों के आँसू पुरुषों की कोधाग्नि भड़काने में तेल का काम देते हैं। रात भर करवटें बदलते रहे। उद्विग्नता के कारण पलक तक नहीं झपकी। प्रातःकाल अपने बाप के पास जाकर बोले—दादा, अब इस घर में मेरा निबाह न होगा।

इस तरह की विद्रोह-पूर्ण बातें कहने पर श्रीकण्ठ ने कितनी ही बार अपने कई मित्रों को आड़े हाथों लिया था; परन्तु दुर्भाग्य, आज उन्हें स्वयं वे ही बातें अपने मुँह से कहनी पड़ी! दूसरों को उपदेश देना भी कितना सहज है।

वेनी माधव सिंह घबरा उठे और बोले—क्यों?

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

श्रीकण्ठ—इसलिए कि मुझे भी अपनी मान-प्रतिष्ठा का कुछ विचार है। आपके घर में अब न्याय और हठ का प्रकोप हो रहा है। जिनको बड़ों का आदर-सम्मान करना चाहिये, वे उनके सिर चढ़ते हैं। मैं दूसरे का नौकर ठहरा, घर पर रहता नहीं; यहाँ मेरे पीछे स्त्रियों पर खड़ाऊं और जूतों की बौछार होती हैं। कड़ी बात तक चिंता नहीं, कोई एक की दो-दो कह ले, वहाँ तक मैं सह सकता हूँ; किन्तु यह कदापि नहीं हो सकता, कि मेरे ऊपर लात-घूसे पड़ें और मैं दम न मारूँ।

बेनीमाधव सिंह कुछ जवाब न दे सके। श्रीकण्ठ सदैव उनका आदर करते थे। उनके ऐसे तेवर देखकर बूढ़ा ठाकुर अवाक् रह गया। केवल इतना ही बोला—बेटा, तुम बुद्धिमान् होकर ऐसी बातें करते हो? स्त्रियाँ इसी तरह घर का नाश कर देती हैं, उनका बहुत सिर चढ़ाना अच्छा नहीं।

श्रीकण्ठ—इतना मैं जानता हूँ, आपके आशीर्वाद से ऐसा मूर्ख नहीं हूँ। आप स्वयं जानते हैं, कि मेरे ही समझाने-बुझाने से, इसी गाँव में कई घर सँभल गये; पर जिस स्त्री की मान-प्रतिष्ठा का मैं ईश्वर के दर्बार में उत्तरदाता हूँ, उसके प्रति ऐसा घोर अन्याय और पशुवत् व्यवहार मुझे असह्य है। आप सच मानिये, मेरे लिये यही कुछ कम नहीं है, कि लालबिहारी को कुछ दण्ड नहीं देता।

अब बेनीमाधव सिंह भी गरमाये। ऐसी बातें और न सुन सके। बोले—लालबिहारी तुम्हारा भाई है। उससे जब कभी भूल-चूक हो, उसके कान पकड़ो। लेकिन....

श्रीकण्ठ—लालबिहारी को मैं अब अपना भाई नहीं समझता।

बेनीमाधव सिंह—स्त्री के पीछे?

श्रीकण्ठ—जी नहीं, उसकी क्रूरता और अविवेक के कारण।

दोनों कुछ देर चुप रहे। ठाकुर साहब लड़के का क्रोध शान्त करना

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

चाहते थे; लेकिन यह नहीं स्वीकार करना चाहते थे, कि लालबिहारी ने कोई अनुचित काम किया है। इसी बीच में गाँव के और कई सज्जन हुक्के-चिलम के बहाने वहाँ आ बैठे। कई स्त्रियों ने जब यह सुना, कि श्रीकण्ठ पत्नी के पीछे पिता से लड़ने पर तैयार हैं, तो उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। दोनों पक्षों की मधुर वाणियां सुनने के लिये उनकी आत्माएँ तलमलाने लगीं। गाँव में कुछ ऐसे कुटिल मनुष्य भी थे, जो इस कुल की नीतिपूर्ण गति पर मन-ही-मन जलते थे, ये कहा करते थे—श्रीकण्ठ अपने बाप से दबता है; इसलिये वह दब्बू है। उसने विद्या पढ़ी; इसलिये वह किताबों का कीड़ा है। वेनीमाधव सिंह उसकी सलाह के बिना कोई काम नहीं करते, यह उनकी मूर्खता है। इन महानुभावों की शुभ कामनाएँ आज पूरी होती दिखायी दीं। कोई हुक्का पीने के बहाने और कोई लगान की रसीद दिखाने आकर बैठ गया। बेनीमाधव सिंह पुराने आदमी थे। इन भावों को ताड़ गये। उन्होंने निश्चय किया, कि चाहे कुछ ही क्यों न हो, उन द्रोहियों को ताली बजाने का अवसर न दूँगा। तुरन्त कोमल शब्दों में बोले—बेटा, मैं तुमसे बाहर नहीं हूँ। तुम्हारा जो जी चाहे करो, अब तो लड़के से अपराध हो गया।

इलाहाबाद का अनुभव-रहित झल्लाया हुआ ग्रेजुएट इस बात को न समझ सका। उसे डिबेटिंग-क्लब में अपनी बात पर अड़ने की आदत थी, इस हथकंडों की उसे क्या खबर? बाप ने जिस मतलब से बात पलटी थी, वह उसकी समझ में न आया। बोला—मैं लालबिहारी के साथ अब इस घर में नहीं रह सकता।

बेनीमाधव—बेटा, बुद्धिमान् लोग मूर्खों की बात पर ध्यान नहीं देते। वह बेसमझ लड़का है। उससे जो कुछ भूल हुई, उसे तुम बड़े होकर क्षमा करो!

श्रीकण्ठ—उसकी इस दुष्टता को मैं कदापि नहीं सह सकता। या तो वही घर में रहेगा; या मैं ही। आपको यदि वह अधिक प्यारा है,

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तो मुझे विदा कीजिये; मैं अपना भार आप सँभाल लूँगा। यदि मुझे रखना चाहते हैं, तो उससे कहिये, जहाँ चाहे चला जाय। बस, यह मेरा अन्तिम निश्चय है।

लालबिहारी सिंह दरवाजे की चौखट पर चुपचाप खड़ा बड़े भाई की बातें सुन रहा था। वह उनका बहुत आदर करता था। उसे कभी इतना साहस न हुआ था कि श्रीकण्ठ के सामने चारपाई पर बैठ जाय, हुक्का पी ले या पान खा ले। बाप का भी वह इतना मान न करता था। श्रीकण्ठ का भी उस पर हार्दिक स्नेह था। अपने होश में उन्होंने कभी उसे घुड़का तक न था। जब वह इलाहाबाद से आते तो उसके लिये कोई-न-कोई वस्तु अवश्य लाते। मुगदर की जोड़ी उन्होंने बनवा दी थी। पिछले साल जब उसने अपने से ड्योढ़े जवान को नागपंचमी के दिन दंगल में पछाड़ दिया, तो उन्होंने पुलकित होकर अखाड़े में ही जाकर उसे गले से लगा लिया था, पाँच रुपये के पैसे लुटाये थे। ऐसे भाई के मुँह से आज ऐसी हृदय-विदारक बात सुनकर लालबिहारी को बड़ी ग्लानि हुई। वह फूट-फूटकर रोने लगा। इसमें सन्देह नहीं कि वह अपने किये पर पछता रहा था। भाई के आने से एक दिन पहले से उसकी छाती धड़कती थी कि देखूँ, भैया क्या कहते हैं। मैं उनके सम्मुख कैसे जाऊँगा, उनसे कैसे बोलूँगा, मेरी आँखें उनके सामने कैसे उठेंगी। उसने समझा था कि भैया मुझे बुलाकर समझा देंगे। इस आशा के विपरीत आज उसने उन्हें निर्दयता की मूर्ति बने हुये पाया। वह मूर्ख था, परन्तु उसका मन कहता था, कि भैया मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। यदि श्रीकण्ठ उसे अकेले में बुलाकर दो-चार कड़ी बातें कह देते, इतना ही नहीं, दो-चार तमाचे भी लगा देते, तो कदाचित् उसे इतना दुःख न होता; पर भाई का यह कहना, कि अब मैं इसकी सूरत नहीं देखना चाहता, लालबिहारी से सहा न गया। वह रोता हुआ घर में आया। कोठरी में जाकर कपड़े

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पहने, आँखें पोछीं, जिसमें कोई यह न समझे, कि रोता था ! तब आनन्दी के द्वार पर आकर बोला—भाभी भैया ने निश्चय किया है कि यह मेरे साथ इस घर में न रहेंगे। अब वह मेरा मुँह नहीं देखना चाहते; इसलिये अब मैं जाता हूँ, उन्हें फिर मुँह न दिखाऊँगा ! मुझसे जो कुछ अपराध हुआ, उसे क्षमा करना।

यह कहते-कहते लालबिहारी का गला भर आया।

—४—

जिस समय लालबिहारी सिंह सिर झुकाये आनन्दी के द्वार पर खड़ा था, उसी समय श्रीकण्ठ सिंह भी आँखें लाल किये बाहर से आये। भाई को खड़ा देखा तो घृणा से आँखें फेर लीं, और कतराकर निकल गये। मानों उसकी परछाहीं से दूर भागते हैं।

आनन्दी ने लालबिहारी की शिकायत तो की थी; लेकिन अब मन में पछता रही थी। वह स्वभाव से ही दयावती थी। उसे इसका तनिक भी ध्यान न था कि बात इतनी बढ़ जायगी। वह मन में अपने पति पर झुँझला रही थी कि यह इतने गरम क्यों होते हैं। उस पर यह भय भी लगा हुआ था कि कहीं मुझसे इलाहाबाद चलने को कहें, तो कैसे क्या करूँगी। इसी बीच में जब उसने लालबिहारी को दरवाजे पर खड़े यह कहते सुना, कि अब मैं जाता हूँ, मुझसे जो कुछ अपराध हुआ, उसे क्षमा करना, तो उसका रहा-सहा क्रोध भी पानी हो गया। वह रोने लगी। मन का मैल धोने के लिए नयन-जल से उपयुक्त और कोई वस्तु नहीं हैं।

श्रीकण्ठ को देखकर आनन्दी ने कहा—लाला बाहर खड़े बहुत रो रहे हैं।

श्रीकण्ठ—तो मैं क्या करूँ ?

आनन्दी—भीतर बुला लो। मेरी जीभ में आग लगे ! मैंने कहाँ से यह झगड़ा उठाया।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

श्रीकण्ठ—मैं न बुलाऊँगा।

आनन्दी—पछताओगे। उन्हें बहुत ग्लानि हो गयी है, ऐसा न हो कहीं चल दें।

श्रीकंठ न उठे। इतने में लालबिहारी ने फिर कहा—भाभी भैया से मेरा प्रणाम कह दो। वह मेरा मुँह नहीं देखना चाहते; इसलिए मैं भी अपना मुँह उन्हें न दिखाऊँगा।

लालबिहारी इतना कहकर लौट पड़ा, और शीघ्रता से दरवाजे की ओर बढ़ा! अन्त में आनन्दी कमरे से निकली, और उसका हाथ पकड़ लिया। लालबिहारी ने पीछे फिर कर देखा, और आँखों में आँसू भरे बोला—मुझे जाने दो।

आनन्दी—कहाँ जाते हो?

लालबिहारी—जहाँ कोई मेरा मुँह न देखे!

आनन्दी—मैं न जाने दूँगी।

लालबिहारी—मैं तुम लोगों के साथ रहने योग्य नहीं हूँ।

आनन्दी—तुम्हें मेरी सौगंध, अब एक पग भी आगे न बढ़ना।

लालबिहारी—जब तक मुझे यह न मालूम हो जाय, कि भैया का मन मेरी तरफ से साफ हो गया, तब तक मैं इस घर में कदापि न रहूँगा।

आनन्दी—मैं ईश्वर की सच्ची देकर कहती हूँ, कि तुम्हारी ओर से मेरे मन में तनिक भी मैल नहीं है।

अब श्रीकण्ठ का हृदय भी पिघला। उन्होंने बाहर आकर लालबिहारी को गले लगा लिया। दोनों भाई खूब फूट-फूटकर रोये। लालबिहारी ने सिसकते हुए कहा—भैया, अब कभी मत कहना कि तुम्हारा मुँह न देखूँगा। इसके सिवा आप जो दण्ड देंगे, मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा।

श्रीकण्ठ ने काँपते हुए स्वर से कहा—लल्लू, इन बातों को बिलकुल भूल जाओ। ईश्वर चाहेगा, तो फिर ऐसा अवसर न आवेगा!

बेनीमाधव सिंह बाहर से आ रहे थे। दोनों भाइयों को गले मिलते

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

देखकर आनन्द से पुलकित हो गये। बोल उठे—बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं। बिगड़ता हुआ काम बना लेती हैं।

गाँव में जिसने यह वृतान्त सुना, उसी ने इन शब्दों में आनन्दी की उदारता को सराहा—'बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं।'

———

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

वैज्ञानिक की पत्नी

[श्री यमुनादत्त वैष्णव]

नलिनी ने कमरे में प्रवेश किया। अभी डाक्टर बोस प्रयोग-शाला से न आये थे? कमरा सुनसान था। किताबें मेज पर कुछ खुली और कुछ किताबदान पर खड़ी थीं। मेज के एक कोने पर बहुत से वैज्ञानिक विषयों के, भिन्न-भिन्न देशों के, समाचार पत्र जर्नल्स आदि रखे थे। एक दूसरी छोटी-सी मेज पर घड़ी पाँच बजा रही थी। नलिनी ने मेज पर सबसे ऊपर रखी सफेद कागज की एक कापी उठाई। वह डाक्टर बोस के अपने प्रयोगों का, जिन्हें वे उन्हीं दिनों कर रहे थे, विवरण था। नलिनी ने उसे लेकर मेज के कपड़े के नीचे छिपा दिया।

थोड़ी ही देर पीछे डाक्टर बोस आ गये। नलिनी ने चाय का प्याला लाकर मेज पर रखा और नौकर ने फलों की एक तश्तरी।

डाक्टर बोस ने चाय पीते हुए कहा—"शम्भू, किताबें तो ले आओ।"

नौकर ने किताबों का बड़ा-सा बण्डल, जिसे डाक्टर बोस प्रयोग-शाला से उसी समय लाये थे, मेज पर ला रक्खा। बोस ने चाय का प्याला नीचे किया और उन बड़ी-बड़ी पुस्तकों में से एक को खोल कर पढ़ने लगे।

थोड़ी देर में नलिनी फिर आई। उसकी चाल से और वस्त्रा-भूषणों से कवियों के मस्तिष्क में अनेक प्रकार की उपमायें और रूपक अनायास ही आ सकते थे, पर बोस को उसका आना भी न ज्ञात हुआ।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

धीरे से मेज पर दोनों हाथ रखकर झुकते हुए उसने कहा—"चाय तो पी लीजिये !"

उसके शब्दों में माधुर्य और वाणी में रस भरा था। डाक्टर ने पुस्तक पर से आँखें उठाई। नलिनी हँस रही थी। चाय का एक घूँट पीकर फिर उसे मेज पर रख दिया और वे कुछ ढूँढ़ने लगे। मेज की पुस्तकें उलटने-पलटने लगे। फिर उन समाचार पत्रों को एक-एक करके उठाने लगे; पर उनके नोट्स की वह सफेद कापी न मिली।

तब उन्होंने पुकारा, "नलिनी !"

नलिनी वहीं किवाड़ पकड़े खडी यह सब कुछ देख रही थी। मन्द-मन्द हँसी से उसने कहा—"कहिए ?"

बोस बोले—वह सफेद कापी जिसमें हम बहुधा लिखा करते हैं, कहाँ है ?"

नलिनी ने कहा —"मुझे क्या मालूम ?" और स्वयं भी ढूँढ़ने का बहाना करने लगी।

डा० बोस कहने लगे—"उसमें मेरे तीन महीने के सभी प्रयोगों का वर्णन है। बड़ी जरूरी चीज है देखो, लाईब्रेरी में तो नहीं है।

नलिनी लाईब्रेरी में चली गई और खाली आलमारियों को ढूँढ़ने सी लगी। डा० बोस ने हैट पहिना और जल्दी से साइकिल ढूँढ़ने लगे। पर साइकिल भी वहाँ न थी।

"नलिनी !" उन्होंने फिर पुकारा। "साइकिल कहाँ है ?"

नलिनी ने कहा—"शायद नौकर ले गया है।"

"ओह !" डाक्टर बोस ने कुर्सी पर हैट रखते हुए कहा—"जाने कितनी देर में आयेगा !" फिर बोले—मुझे ऐसा खयाल है कि शायद मैं उस कापी को प्रयोगशाला में ही छोड़ आया हूँ।" और चट से उन्होंने हैट पहिन लिया और कहा—"पैदल ही जाकर ले आऊँ।"

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

नलिनी ने कहा—"क्यों, यहीं कहीं रक्खी होगी, मिल ही जायगी और यह चाय तो बिलकुल ठण्डी हो गई!" और चाय मेज़ से उठाते हुये उसने कहा—"आज रहने दीजिए; आप तो रोज ही लिखते रहते हैं। आज न भी सही। इतनी चिन्ता की क्या बात है? मिल ही जायगी।

डाक्टर बोस ने कुछ भी उत्तर न दिया। वे जल्दी से किवाड़ें खोल कर फाटक से बाहर निकल गये। सौभाग्यवश उसी समय शम्भू साइकिल लेकर आ गया। तब डाक्टर बोस सीधे प्रयोगशाला को चले गये। नलिनी कुछ भी न कर सकी।

× × ×

डाक्टर बोस भौतिक और जीव-विज्ञान के बड़े होनहार विद्वान हैं। केवल बीस वर्ष की आयु में उन्हें अपनी अपूर्व वैज्ञानिक मौलिकताओं के लिये डाक्टर की उपाधि मिली थी। उनके 'जीवन और भौतिक विज्ञान' नामक प्रबन्ध ने विज्ञान संसार में खलबली मचा दी थी।

नलिनी और डाक्टर बोस का विवाह हुये लगभग एक वर्ष हो चुका था पर नलिनी ने जिस सुख का चित्र अपने वैवाहिक जीवन का खींचा था वह सब अब असम्भव सा जान पड़ रहा था। उसमें रूप था, यौवन था, पर डाक्टर बोस के लिये पुस्तकों और प्रयोगशाला के अतिरिक्त संसार निस्सार था। जब वे ठीक पाँच बजे प्रयोगशाला से आते तो नलिनी बनठन कर उनके पास पहुँचती, हँस-हँस कर बातें करती; पर बोस को पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ सूझता ही न था, उन्हें नलिनी से बोलने को ही समय न मिलता था? कभी कुछ बोलते भी तो बस उन्हीं पुस्तकों के विषय में।

नलिनी उनके लिये सुन्दर भोजन बना रखती, अच्छे-अच्छे फल मँगवा रखती; पर वह सब मेज पर ज्यों का त्यों रखा रहता था। डाक्टर

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

बोस को याद आ गई तो कभी एक दो टुकड़े पढ़ते-पढ़ते मुँह में डाल लेते थे, नहीं तो वे शम्भू के ही हाथ लगते थे ! नलिनी सुन्दर वस्त्रों को पहिन कर उनके आने के समय की प्रतीक्षा में उनके कमरे में बैठी रहती थी। आते ही हँसती हुई कहती—"आज तो आप देर में आये !" बोस "हाँ" कह देते, या बहुत हुआ तो—"नौकर से किताब लाने को कह दो !" कह देते।

उस दिन नलिनी ने सोचा कि—अगर आज कापी छिपा दूँ तो ज़रूर कुछ न कुछ बातें करने का अवसर मिलेगा ही; पर फल इतना भयानक हुआ कि डाक्टर बोस को प्रयोगशाला में जाना ही पड़ा। वह कमरे में आई और उसने चादर के नीचे से वह कापी निकाल कर ऊपर रख दी। न जाने अब आकर क्या कहेंगे ! यही डर उसे हो रहा था, कि थोड़ी देर में डाक्टर बोस ने हाँफते हुये कमरे में प्रवेश किया और कहा—"कुंजियाँ ले जाना तो भूल ही गया !" पर मेज पर कापी देख कर हँसते हुये बोले—"अरे तुमने पा लिया इसको !" और चट कुर्सी पर बैठकर पढ़ने लग गये। यह भी न पूछा कि—"तुमने इसे कहाँ पाया !"

× × ×

इधर नलिनी को अपना जीवन नीरस और शुष्क ज्ञात हो रहा था, उधर बोस वैज्ञानिक संसार में नई-नई उपाधियों से विभूषित किये जा रहे थे। नलिनी का अधिकांश समय रोते-रोते बीतता था और बोस अपना समय प्रयोगशाला में पले चूहे, मेढकों और बिल्लियों को हँसाने में बिता रहे थे ! नलिनी डाक्टर बोस को ज़रा भी अपनी ओर आकर्षित न कर सकी। वह बचपन से ही बड़ी चंचल और हँसोड़ थी; पर बोस के वैज्ञानिक जीवन पर उसकी चंचलता का कुछ भी प्रभाव न हुआ। कितनी बार वह सोचती—'आज उन्हें अवश्य हँसा दूँगी और किताब भी न पढ़ने दूँगी।' पर ज्योंही वह बोस के सम्मुख जाती, उनकी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

गम्भीर मुद्रा देखती, उसका साहस जाता रहता। यदि नलिनी कुछ हँसी की बात कह भी देती तो या तो वह डाक्टर बोस के कानों तक पहुँचती ही न थी, या बोस उस हँसी की बात को समझ ही न सकते थे। पुस्तक से आँखें मुश्किल से ही उठती होंगी।

धीरे-धीरे वे प्रयोगशाला में ही अपना अधिक समय बिताने लगे। पहिले तो ठीक पाँच बजे शाम को आ जाते थे, अब कभी-कभी सात बजे तक वहीं रहने लगे। एक दो बार तो नलिनी को बड़ी चिंता हुई; क्योंकि वे दस बजे तक प्रयोगशाला से न लौटे। नलिनी को नौकर भेज कर उन्हें बुलाना पड़ा। घर आकर भी उनका खाने-पीने की ओर बिलकुल ध्यान ही न रहता था।

अन्त में प्रयोगशाला में रहने की आदत उनकी यहाँ तक बढ़ गई कि शम्भू को रोज दस बजे जाकर उन्हें बुला लाना पड़ता था। बहुत दिनों तक यही हाल रहा। और तब एक दिन दस बजे घर आकर उन्होंने नलिनी से कहा कि—"मेरा खाना शम्भू के हाथ वहीं भेज दिया करो!"

अब डाक्टर बोस कभी दो चार दिन बाद घर आते थे, वह कभी अपनी लाइब्रेरी से पुस्तक ले जाने के लिये!

शम्भू को तीनों समय डाक्टर बोस के लिये प्रयोगशाला में ही भोजन ले जाना पड़ता था। और नलिनी घर में बैठी-बैठी अपने भाग्य को कोसती थी। या फिर डाक्टर बोस की लाइब्रेरी में बैठी उन वैज्ञानिक पुस्तकों के पन्ने उलटा करती। डाक्टर बोस को रोज ही घर बुलाने के लिये वह अनेक प्रयत्न करती, पर सब निष्फल हो जाते थे। वह, उन चिट्ठियों और समाचार पत्रों को जो घर के पते पर आ जाते थे प्रयोगशाला में न भेजती ताकि डाक्टर बोस को स्वयं आना पड़े। मिलने वालों को रोक कर नौकर को प्रयोगशाला भेजती कि डाक्टर बोस को बुला लावे; पर यह सब धीरे-धीरे व्यर्थ-सा होने लगा। समाचार

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पत्रों और चिट्ठियों का घर पर आना बन्द सा हो गया। लोग मिलने भी प्रयोगशाला में ही जाने लगे।

× × ×

उस दिन नलिनी स्वयं भोजन लेकर प्रयोगशाला में चली गई। उसे डर था कि डाक्टर बोस क्रोधित होंगे—आश्चर्य पड़ जायेंगे, पूछेंगे, तुम यहाँ क्योंकर आ गईं! पर बोस अपने ही प्रयोग में मस्त थे। नलिनी ने पत्थर की मेज़ पर खाना रक्खा और धीरे से डरती-डरती बोली "लीजिये, खाना ले आई हूँ!"

डाक्टर बोस बिजली के तारों से बाहर निकले और खड़े-खड़े खाना खाने लगे। उन्हें नलिनी को देखकर कुछ भी विस्मय न हुआ, मानो रोज ही की साधारण सी बात हो। नलिनी प्रयोगशाला में पले उन चूहे, बिल्ली और कबूतरों को देखने लगी। एक बड़े से जकड़े वृत्ताकार चुम्बक के नीचे एक बड़ा-सा चूहा पींजरे में रखा था। नलिनी ने कौतूहलवश उस पींजरे को अपने हाथों से उठा लिया कि बड़े जोर से 'घर्र-घर्र' की आवाज होने लगी और एक बड़ी सी चिनगारी चुम्बक के एक कोने से दूसरे सिरे तक जोर का शब्द करती हुई कूद गई। घबड़ाकर बोस ने पीछे की ओर देखा, नलिनी थर-थर काँप रही थी और उस पींजड़े को जमीन पर डरते-डरते रख रही थी।

डाक्टर बोस ने बड़े आश्चर्य से पूछा—"नलिनी-नलिनी क्या तुमने उस पींजड़े को उठा लिया? क्या तुम १,५ ० बोल्ट दबाव की विद्युतधारा को सह सकती हो!" और जल्दी-जल्दी उन्होंने सारे पींजडे की परीक्षा की, बोल्ट-मापक में धारा नापी—ठीक १, ४१७ वोल्ट थी। डाक्टर बोस की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वे कमरे में पागलों की तरह नाचने लगे। और "नलिनी, तुम में अपूर्व शक्ति है, अपूर्व शक्ति है!" कहकर चिल्लाने लगे। और वे कहने लगे—"नलिनी, मैं

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

इन जीवों पर प्रयोग कर रहा हूँ कि किस प्रकार मृत्यु की समस्या हल हो सकती है। जब मनुष्य वृद्ध होने लगता है तो उसके सेल सब सिकुड़ने लगते हैं और धीरे-धीरे नष्ट होने लगते हैं। यदि किसी प्रकार मनुष्य को अपने शरीर के संचालन के लिये अपने भोजन की गर्मी पर निर्भर न रहना पड़े और उसके शरीर में विद्युत् से ताप की मात्रा ठीक रक्खी जाय तो प्रायः सभी रोग नष्ट हो जायेंगे। क्योंकि फिर मनुष्य को भोजन पर निर्भर ही न रहना पड़ेगा। यही प्रयोग मैं इन जीवों पर कर रहा था। यह चूहा तीन सप्ताह से भूखा है और इसके शरीर में इस बड़े विद्युत चुम्बक से ताप का संवाहन और संचारण किया जा रहा है। मैं रोज इसके रक्त की परीक्षा करता हूँ। यह देखो, यह इसके रक्तकणों (cells) की वृद्धि का रेखा-चित्र (graph) है। उस सप्ताह में ये प्रति दिन दो एंगस्ट्रॉम घटे, लेकिन मैंने इस सप्ताह में बिजली की धारा का दबाव ११५० से १४७० वोल्ट कर दिया और इसके रक्त कीटाणु अब स्थिर हैं। देखो ग्राफ का यह सिरा बिलकुल सीधा है। तीन दिन से तो चूहा अमर हो गया, ऐसा ज्ञात होता है। मैं मनुष्य पर भी यही प्रयोग करना चाहता था, पर आदमी बड़ी कठिनता से ३०० वोल्ट विद्युत् धारा को सहन कर सकता है। सैक्षबुल ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि—मनुष्य के रक्त कणों के लिए कम से कम २,००० वोल्ट की आवश्यकता है। नलिनी मुझे आज बड़ा ही हर्ष है कि मैं इतना भाग्यशाली हूँ कि मुझे तुम जैसी अपूर्व शक्तिवाली पत्नी मिली। तुम अभी १,५०० वोल्ट सहन कर सकती हो। यदि प्रति-दिन पाँच वोल्ट भी अधिक सहने का अभ्यास करो तो हमें इस ही महीने में सफलता मिल जायेगी। नलिनी, मैं तब संसार को अमर बना सकने का प्रयोग अपनी सभा के सम्मुख रख सकूँगा। क्या तुम मुझे सहायता देने को तत्पर हो?'

नलिनी ने हँसते हुये कहा—"अवश्य, मेरे लिये इससे अधिक सुख

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

का विषय हो ही क्या सकता है!" आज मानों नलिनी को वह सुख मिला जिसके लिये वह इतने दिनों से तरस रही थी; आज उसे वह शान्ति मिली जिसके लिये वह वर्षों से छटपटा रही थी। ओह! उसका पति स्वयं उसकी ओर आकर्षित हुआ है।

× × ×

अब नलिनी को रोज आठ-दस घंटे एक बड़े विद्युत् चुम्बक के नीचे बैठना पड़ता था। डाक्टर बोस उसका मन बहलाने के लिये तरह-तरह के उपाय करते थे। कभी रेडियो खोल देते, कभी समाचार पत्र पढ़ने लगते और कभी स्वयं गुन-गुनाने लग जाते। रोज शाम को नलिनी की उँगली से एक दो बूँद रक्त को निकाल कर रक्त-कीटाणुओं की परीक्षा लेते।

पाँच ही महीने में नलिनी २००० वोल्ट तक की धारा सहने लगी। और रक्त-कीटाणुओं में धीरे-धीरे परिवर्तन घटने लगा। पर नलिनी बहुधा अपने को बहुत कमजोर सी ज्ञात करने लगी; फिर भी वह डाक्टर बोस से कुछ भी न कहती। उसे डर था कि यदि डाक्टर बोस प्रयोग करना बन्द कर देंगे तो फिर मेरा जीवन उसी प्रकार नीरस और शुष्क हो जायगा! बहुधा डाक्टर बोस कहते "नलिनी, आज कल तुम बहुत ही सुन्दर दिखलाई देती हो! मैं तो सोचता हूँ कि यह उसी विद्युत् धारा का प्रभाव है। क्या इस प्रयोग के पूर्व भी तुम ऐसी ही थी!"

नलिनी कुछ न कहती! चुम्बक के नीचे बैठने में उसे विशेष कष्ट न होता था। हाँ पसीना कभी-कभी आ जाता था। पर रोज-रोज सुई से छेद कर रक्त की बूँदे निकालने से तमाम उँगुलियों के सिरे बड़े ही कुरूप हो गये थे। उनसे अब कोई वस्तु छुई भी न जाती थी। जब बोस दिन भर की तपस्या के बाद, रक्त की परीक्षा के लिये एक बूँद खून उन उँगुलियों से निकालने का प्रयत्न करते थे

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तो यह उसके लिए बड़ा ही दुखदायी लगता था। पति कहीं रुष्ट न हो जाय, इसीलिए वह हँसते-हँसते उस असह्य पीड़ा को सह लेती। उसका भोजन भी कम होता गया। डाक्टर बोस उसे कम खाते देख कहते—"नलिनी, जब तुम्हारा भोजन बिलकुल ही बन्द हो जायेगा और तुम्हारे शरीर के सभी यंत्र विद्युत् से चलने लगेंगे, उसी दिन हमें विजय मिल जायेगी!"

एक महीने के बाद, नलिनी २,१५० वोल्ट तक सहन करने लगी। उसका शरीर सूखने लगा। रक्त निकालने की क्रिया उसे बहुत ही असह्य होने लगी। एक दो बार उसने विवश होकर उस पीड़ा से बचने के लिए डाक्टर बोस से कहा भी कि—मुझे आज बहुत निबलता प्रतीत होती है। पर बोस कहने लगे "हाँ, अब कुछ दिन ऐसा अवश्य होगा, क्योंकि रक्तकण अपनी आदत बदल रहे हैं। अब वे भोजन की ताकत छोड़ कर विद्युत् धारा को ग्रहण कर रहे हैं।

× × ×

ठीक १९८ दिन में रक्त-कीटाणुओं की वृद्धि का ग्राफ सीधा हो गया। अब प्रयोग का एक ही दिन बाकी था! बोस अपने फलों को प्रकाशित करने भेजने वाले थे। उस शाम को बोस ने नलिनी की अँगुलियों से रक्त की बूंदे निकालने का प्रयत्न किया और कितनी ही कोशिशें कीं, पर फिर भी रक्त की एक बूंद न गिरी। उन्हें विश्वास हो गया कि आज सारे शरीर के रक्त में परिवर्तन हो गया। स्थिरता आ गई है और नलिनी अमर हो गई है। उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न था।

उसी समय टेलीफ़ोन देकर उन्होंने अपने शिक्षालय और अन्वेषण विभाग के तमाम विद्वानों को बुलाया। एक ही घंटे में दस बारह विद्वान उपस्थित हो गये। डाक्टर बोस ने नलिनी की अपूर्व शक्ति का

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

विवरण देते हुए अपने सारे प्रयोगों को उन्हें समझाया। स्वयं अन्वेषण विभाग के अध्यक्ष डाक्टर ऐडिंगटन से उन्होंने नलिनी के रक्त-कणों की परीक्षा करने को कहा; पर रक्त तो अब निकलता ही न था। अपने प्रयोगों की सत्यता प्रकट करने के लिए यह अत्यंत आवश्यकीय था कि, कम से कम एक छोटा सा रक्त बिन्दु कहीं से नलिनी के शरीर से निकाला जाय। अन्त में उन्होंने नलिनी से हँसते हुए कहा—' यदि शिरा (Artery) में एक छेद कर दिया जाय तो अवश्य रक्त निकलेगा!" नलिनी कुछ न कह सकी।

तब डाक्टर बोस ने हाथ की आर्टरी (शिरा) में एक छेद किया। खून बह निकला और उसी समय नलिनी ने शिरा को जोर से दबाकर रक्त बहना बन्द कर दिया। डाक्टर ऐडिंगटन रक्त कणों की परीक्षा करने लगे। और सभी विद्वान तल्लीन हो कर उस महान् आविष्कार को देखने लगे। नलिनी की ओर किसी का ध्यान भी न रहा! वह रक्त-प्रवाह को रोक नहीं पा रही थी, उसने अपनी साड़ी के किनारे से हाथ को बांध लिया। और धीरे-धीरे तमाम साड़ी रक्त से भींग गई। और उसका सिर धीरे-धीरे कुर्सी पर लद गया।

प्रयोग के समाप्त होने पर एडिंगटन ने आविष्कार की भूरि-भूरि प्रशंसा की और नलिनी को 'धन्यबाद' देने के लिए उसकी ओर देखा; पर वह उस समय तक 'अमर जीवन' पा चुकी थी।

———

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पाजेब

[श्री जैनेन्द्रकुमार]

बाजार में एक नई तरह की पाजेब चली है। पैरों में पड़कर वे बड़ी अच्छी मालूम होती हैं। उनकी कड़ियाँ आपस में लचक के साथ जुड़ी रहती हैं कि पाजेब का मानो निज का आकार कुछ नहीं है, जिस पाँव में पड़े उसी के अनुकूल हो रहती हैं।

पास-पड़ोस में तो सब नन्हीं-बड़ी के पैरों में आप वही पाजेब देख लीजिए। एक ने पहनी कि फिर दूसरी ने भी पहनी। देखा-देखी में इस तरह उनका न पहनना मुश्किल हो गया है।

हमारी मुन्नी ने भी कहा कि बाबूजी, हम पाजेब पहनेंगे। बोलिए भला। कठिनाई से चार बरस की उम्र और पाजेब पहनेगी।

मैंने कहा कि कैसी पाजेब ?

बोली कि हाँ, वई जैसी रुकमन पहनती है, जैसी सीला पहनती है।

मैंने कहा कि अच्छा-अच्छा।

बोली कि मैं तो आज ही मँगा लूँगी।

मैंने कहा कि अच्छा भाई आज सही।

उस वक्त तो खैर मुन्नी किसी काम में बहल गई! लेकिन जब दोपहर आई मुन्नी की बूआ, तब वह मुन्नी सहज मानने वाली न थी।

बूआ ने मुन्नी को मिठाई खिलाई और गोद में लिया और कहा कि अच्छा, तो तेरी पाजेब अब के इतवार को जरूर लेती आऊँगी।

इतवार को बूआ आई और पाजेब ले आई। मुन्नी उन्हें पहनकर खुशी के मारे यहाँ-से-वहाँ छुमकती फिरी। रुकमिन के पास गई और कहा देख रुकमिन, मेरी पाजेब। शीला को भी अपनी पाजेब दिखाई।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सबने पाजेब पहनी देखकर उसे प्यार किया और तारीफ की। सचमुच वह चाँदी की सफेद दो तीन लड़ियाँ-सी टखनों के चारों ओर लिपट कर, चुपचाप बिछी हुई, ऐसी सुघड़ लगती थीं—कि बहुत ही—और बच्चों की खुशी का ठिकाना न था।

और हमारे महाशय आशुतोष, जो मुन्नी के बड़े भाई थे, पहले तो मुन्नी को सजी-बजी देखकर बड़े खुश हुए। वह हाथ पकड़कर अपनी बढ़िया मुन्नी को पाजेब-सहित दिखाने के लिए आस-पास ले गये। मुन्नी की पाजेब का गौरव उन्हें अपना भी मालूम होता था। वह खूब हँसे और ताली पीटी, लेकिन थोड़ी देर बाद वह ठुनकने लगे कि मुन्नी को पाजेब दी, सो हम भी बाईसिकिल लेंगे।

बूआ ने कहा कि अच्छा बेटा अबके जन्म दिन को तुझे भी बाई-सिकिल दिलवायेंगे।

आशू बाबू ने कहा कि हम तो अभी लेंगे।

बूआ ने कहा छी:-छी: तू कोई लड़की है? जिद तो लड़कियाँ किया करती हैं। और लड़कियाँ रोती हैं। कहीं बाबू साहब लोग रोते हैं?

आशुतोष बाबू ने कहा कि तो हम बाईसिकिल जरूर ले लेंगे जनम-दिन वाले रोज।

बूआ ने कहा कि हाँ, यह बात पक्की रही जन्म-दिन पर तुमको बाईसिकिल मिलेगी।

इस तरह वह इतवार का दिन हँसी-खुशी पूरा हुआ। शाम होने पर बच्चों की बूआ चली गईं। पाजेब का शौक घड़ी-भर का था। वह फिर उतार कर रख-रखा दीं गईं, जिससे कहीं खो न जाय। पाजेब वह बारीक और सुबुक काम की थी और खासे दाम लग गए थे।

श्रीमती ने हमसे कहा कि क्यों जी, लगती तो अच्छी है, मैं भी एक बनवा लूँ।

मैंने कहा कि क्यों न बनवाओ? तुम कौन चार बरस की नहीं हो!

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

खैर, यह हुआ। पर मैं रात को अभी अपनी मेज पर था कि श्रीमती ने आकर कहा कि तुमने पाजेब तो नहीं देखीं ?

मैंने आश्चर्य से कहा कि क्या मतलब ?

बोली कि देखो, यहाँ मेज-वेज पर तो नहीं है। एक तो उसमें की है, पर दूसरे पैर की मिलती नहीं है। जाने कहाँ गई ?

मैंने कहा कि जायगी कहाँ ? यहीं-कहीं देख लो। मिल जायगी।

उन्होंने मेरे मेज के कागज उठाने-धरने शुरू किये और अलमारी की किताबें टटोल डालने का भी मनसूबा दिखाया।

मैंने कहा कि यह क्या कर रही हो ? यहाँ वह कहाँ से आई ?

जवाब में वह मुझी से पूछने लगीं कि तो फिर कहाँ है ?

मैंने कहा कि तुमने ही तो रक्खो होगी। कहाँ रक्खो थी ?

बतलाने लगी कि मैंने दोपहर के बाद कोई दो बजे उतारकर दोनों को अच्छी तरह सँभाल कर उस नीचे वाले बक्स में रख दिया था। अब देखा तो एक है, दूसरो गायब है।

मैंने कहा कि तो चलकर वह इस कमरे में कैसे आ जायगी ? भूल हो गई होगी। एक रक्खी होगी एक वहीं-कहीं फर्श पर छूट गई होगी। देखो मिल जायगी। कहीं जा नहीं सकती।

इस पर श्रीमती कह-सुन करने लगीं कि तुम तो ऐसे ही हो। खुद लापरवाह हो, दोष उल्टे मुझे देते हो। कह तो रही हूँ कि मैंने दोनों सँभाल कर रखी थीं।

मैंने कहा कि सँभाल कर रखी थी, तो फिर यहाँ-वहाँ क्यों देख रही हो ? जहाँ रक्खी थी वहीं से ले लो न। वहाँ नहीं है तो फिर किसी ने निकाली ही होगी।

श्रीमती बोलीं कि मेरा भी यही ख्याल हो रहा है। हो न हो, बन्सी नौकर ने निकाली है! मैंने रक्खी, तब वह वहाँ मौजूद भी था।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

मैंने कहा कि तो उससे पूछा ?

बोलीं कि वह तो साफ इनकार करता है।

मैंने कहा कि तो फिर ?

श्रीमती जोर से बोलीं कि तो फिर मैं क्या बताऊँ ? तुम्हें तो किसी बात की फिकर है नहीं। डाँटकर कहते क्यों नहीं हो, उस बंसी को बुलाकर ? जरूर पाजेब उसी ने ली है।

मैंने कहा कि अच्छा, तो उसे क्या कहना होगा ? यह कहूँ कि ला भाई पाजेब दे दे !

श्रीमती झल्लाकर बोलीं कि हो चुका बस कुछ तुमसे। तुम्हीं ने तो उस नौकर की जात को शहजोर बना रखा है। डाट न फटकार, नौकर ऐसे सिर न चढ़ेगा तो क्या होगा ?

बोलीं कि कह तो रही हूँ कि किसी ने उसे बक्स में से निकाला ही है। और सोलह में पन्द्रह आने यह बंसी है। सुनते हो न, वही है।

मैंने कहा कि मैंने बन्सी से पूछा था। उसने नहीं ली मालूम होती।

इस पर श्रीमती ने कहा कि तुम नौकरों को नहीं जानते। वे बड़े छँटे होते हैं। जरूर बन्सी ही चोर है ! नहीं तो क्या फरिश्ते लेने आते।

मैंने कहा कि तुमने आशुतोष से भी पूछा ?

बोली पूछा था। वह तो खुद ट्रंक और बक्स के नीचे घुस-घुसकर खोज लगाने में मेरी मदद करता रहा है। वह नहीं ले सकता।

मैंने कहा उसे पतंग का बड़ा शौक है।

बोली कि तुम तो उसे बताते-बरजते कुछ हो नहीं। उमर होती जा रही है, वह यों ही रह जायगा। तुम्हीं हो उसे पतंग की शह देने वाले।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

मैंने कहा कि जो कहीं पाजेब ही पड़ी मिल गई हो तो ?

बोली कि नहीं, नहीं ! मिलती तो वह बता न देता ?

खैर, बातों-बातों में मालूम हुआ कि उस शाम आशुतोष पतङ्ग और एक डोर का पिन्ना नया लाया है।

श्रीमती ने कहा कि यह तुम्हीं हो जिसने पतङ्ग की उसे इजाजत दी है। बस सारे दिन पतङ्ग-पतङ्ग। यह नहीं कि कभी उसे बिठाकर सबक की भी कोई बात पूछो। मैं सोचती हूँ कि एक दिन तोड़-ताड़ दूँ उसकी सब डोर और पतङ्ग। हां, सो सारे वक्त वही धुन !

मैंने कहा कि खैर, छोड़ो। कल सवेरे पूछ-ताछ करेंगे।

सवेरे बुलाकर मैंने गंभीरता से उससे पूछा कि क्यों बेटा; एक पाजेब नहीं मिल रही है, तुमने तो नहीं देखी ?

वह गुम हो आया। जैसे नाराज हो। उसने सिर हिलाया कि उसने नहीं ली। पर मुँह उसने नहीं खोला।

मैंने कहा कि देखो बेटे, ली हो तो कोई बात नहीं, सच कह देना चाहिए।

उसका मुंह और भी फूल आया। और वह गुम-सुम बैठ रहा।

मेरे मन में उस समय तरह-तरह के सिद्धान्त आए। मैंने स्थिर किया कि अपराध के प्रति करुणा ही होनी चाहिए। रोष का अधिकार नहीं है। प्रेम से ही अपराध-वृत्ति को जीता जा सकता है। आतंक से उसे दबाना ठीक नहीं है। बालक का स्वभाव कोमल होता है और सदा ही उससे स्नेह से व्यवहार करना चाहिए इत्यादि।

मैंने कहा कि बेटा आशुतोष, तुम घबराओ नहीं। सच कहने में घबराना नहीं चाहिए। ली हो तो खुलकर कह दो बेटा। हम कोई सच कहने की सजा थोड़े ही दे सकते हैं ! बल्कि सच बोलने पर तो इनाम मिला करता है।

आशुतोष सब सुनता हुआ बैठा रह गया। उसका मुँह सूजा था।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

वह सामने मेरी आँखों में नहीं देख रहा था। रह-रहकर उसके माथे पर बल पड़ते थे।

"क्यों बेटे, तुमने ली तो नहीं ?

उसने सिर हिलाकर, क्रोध से अस्थिर और तेज आवाज में कहा कि 'मैंने नहीं ली, नहीं ली, नहीं ली। यह कहकर वह रोने को हो आया, पर रोया नहीं। आँखों में आँसू रोक लिये।

उस वक्त मुझे प्रतीत हुआ कि उग्रता दोष का लक्षण है।

मैंने कहा देखो बेटा, डरो नहीं, अच्छा जाओ। ढूँढ़ो, शायद कहीं पड़ी हुई वह पाजेब मिल जाय। मिल जायगी तो हम तुम्हें इनाम देंगे।

वह चला गया और दूसरे कमरे में जाकर पहले तो एक कोने में खड़ा हो गया। कुछ देर चुपचाप खड़े रहकर वह फिर यहाँ वहाँ पाजेब की तलाश में लग गया।

श्रीमती आकर बोलीं कि आशू से तुमने पूछताछ लिया ? क्या ख्याल है ?

मैंने कहा संदेह तो मुझे होता है। नौकर का काम तो यह है नहीं !

श्रीमती ने कहा कि नहीं जी, आशू भला क्यों लेगा ?

मैं कुछ बोला नहीं। मेरा मन जाने कैसे गंभीर प्रेम के भाव से आशुतोष के प्रति उमड़ रहा था। मुझे ऐसा मालूम होता था कि ठीक इस समय आशुतोष को हमें अपनी सहानुभूति से वंचित नहीं करना चाहिए। बल्कि कुछ अतिरिक्त स्नेह इस समय बालक को मिलना चाहिए। मुझे यह एक भारी दुर्घटना मालूम होती थी। मालूम होता था कि अगर आशुतोष ने चोरी की है तो उसका इतना दोष नहीं है; बल्कि यह हमारे ऊपर बड़ा भारी इल्जाम है। बच्चे में चोरी की आदत भयावह हो सकती है लेकिन बच्चे के लिये वैसी लाचारी उपस्थित हो आई,

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

यह और भी कहीं भयावह है। यह हमारी आलोचना है। हम उस चोरी से बरी नहीं हो सकते।

मैंने बुलाकर कहा, अच्छा सुनो। देखो, मेरी तरफ देखो, यह बताओ कि पाजेब तुमने छुन्नू को दी है न ?

वह कुछ देर कुछ नहीं बोला। उसके चेहरे पर रंग आया और गया। मैं एक-एक छाया ताड़ना चाहता था।

मैंने आश्वासन देते हुए कहा कि कोई बात नहीं। हाँ, हाँ, बोलो डरो नहीं। ठीक बताओ बेटे ! कैसा हमारा सच्चा बेटा है।

मानो बड़ी कठिनाई के बाद उसने अपना सिर हिलाया।

मैंने बहुत खुश होकर कहा कि दी है न छुन्नू को ?

उसने सिर हिला दिया।

अत्यन्त सांत्वना के स्वर में स्नेहपूर्वक मैंने कहा कि मुँह से बोलो। छुन्नू को दी है ?

उसने कहा हाँ-आँ।

मैंने अत्यन्त हर्ष के साथ दोनों बाहों में लेकर उसे उठा लिया। कहा कि ऐसे ही बोल दिया करते हैं अच्छे लड़के। आशू हमारा राजा बेटा है। गर्व के भाव से उसे गोद में लिये-लिये मैं उसकी माँ की तरफ गया। उल्लासपूर्वक बोला कि देखो हमारे बेटे ने सच कबूल किया है। पाजेब उसने छुन्नू को दी है।

सुनकर माँ उसकी खुश हो आईं। उन्होंने उसे चूमा। बहुत शाबाशी दी और उसकी बलैयां लेने लगीं।

अशुतोष भी मुस्करा आया अगरचे एक उदासी भी उसके चेहरे से दूर नहीं हुई थी।

उसके बाद अलग ले जाकर मैंने उससे बड़े प्रेम से पूछा कि पाजेब छुन्नू के पास है न ? जाओ माँग ला सकते हो उससे ?

आशुतोष मेरी ओर देखता- हुआ बैठा रह गया। मैंने कहा कि जाओ बेटे ! ले आओ।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

उसने जवाब में मुँह नहीं खोला।

मैंने आग्रह किया तो वह बोला कि छुन्नू के पास नहीं हुई तो वह कहाँ से देगा!

मैंने कहा कि तो जिसको उसने दी होगी उसका नाम बता देगा। सुनकर वह चुप हो गया। मेरे बार-बार कहने पर वह यही कहता रहा कि पाजेब छुन्नू के पास न हुई तो वह देगा कहाँ से ?

अंत में हारकर मैंने कहा कि वह कहीं तो होगी। अच्छा तुमने कहाँ से उठाई थी ?

"पड़ी मिली थी।"

"और फिर नीचे जाकर वह तुमने छुन्नू को दिखाई ?"

"हाँ"

"फिर उसी ने कहा कि इसे बेचेंगे ?"

"हाँ"

"कहाँ बेचने को कहा ?"

"कहा मिठाई लायंगे ?"

"नहीं पतंग लायंगे।"

"अच्छा पतंग को कहा ?"

"हाँ"

तो उसी के पास होनी चाहिए न ? या पतंग वाले के पास होगी। जाओ बेटा उससे ले आओ। कहना हमारे बाबूजी तुम्हें इनाम देंगे।

वह जाना नहीं चाहता था। उसने फिर कहा कि छुन्नू के पास नहीं हुई तो कहाँ से देगा ?

मुझे उसकी जिद बुरी मालूम हुई। मैंने कहा कि तो कहीं तुमने

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

उसे गाड़ दिया है ? क्या किया है ? बोलते क्यों नहीं ?

वह मेरी ओर देखता रहा और कुछ नहीं बोला।

मैंने कहा कुछ कहते क्यों नहीं ?

वह गुम-सुम रह गया। और नहीं बोला।

मैंने डपटकर कहा कि जाओ, जहाँ हो वहीं से पाजेब लेकर आओ।

जब वह अपनी जगह से नहीं उठा और नहीं गया तो मैंने उसे कान पकड़कर उठाया। कहा कि सुनते हो ? जाओ पाजेब लेकर आओ। नहीं तो घर में तुम्हारा काम नहीं है।

उस तरह उठाया जाकर वह उठ गया और कमरे से बाहर निकल गया। निकलकर बरामदे के एक कोने में रूठा मुंह बनाकर खड़ा रह गया।

मुझे बड़ा क्षोभ हो रहा था। यह लड़का सच बोलकर अब किस बात से घबरा रहा है, यह मैं कुछ समझ न सका। मैंने बाहर आकर जरा धीरे से कहा कि जाओ भाई, जाकर छुन्नू से कहते क्यों नहीं हो।

पहले तो उसने कोई जवाब नहीं दिया, और जब जवाब दिया तो बार-बार कहने लगा कि छुन्नू के पास नहीं हुई तो वह कहाँ से देगा ?

मैंने कहा कि जितने में उसने बेची होगी वह दाम दे देंगे। समझे न जाओ, तुम कहो तो।

छुन्नू की माँ तो कह रही है कि उनका लड़का ऐसा काम नहीं कर सकता। उसने पाजेब नहीं देखी।

जिस पर आशुतोष की माँ ने कहा कि नहीं तुम्हारा छुन्नू झूठ बोलता है। क्यों रे आशुतोष तैंने दी थी न ?

आशुतोष ने धीरे से कहा कि हाँ, दी थी।

दूसरी ओर से छुन्नू बढ़कर आया और हाथ फटकार कर बोला कि मुझे नहीं दी। नहीं दी। क्यों रे मुझे कब दी थी ?

आशुतोष ने जिद बाँधकर कहा कि दी तो थी। कह दो नहीं दी थी ?

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

नतीजा यह हुआ कि छुन्नू की माँ ने छुन्नू को खूब पीटा और खुद भी रोने लगी। कहती जाती कि हाय रे, अब हम चोर हो गए। यह कुलच्छिनी औलाद जाने कब मिटेगी ?

बात दूर तक फैल चली। पड़ोस की स्त्रियों में पवन पड़ने लगी। और श्रीमती ने घर लौटकर कहा कि छुन्नू और उसकी माँ दोनों एक से हैं।

मैंने कहा कि तुमने तेजा-तेजी क्यों कर डाली ? ऐसे कोई बात भला कभी सुलझती है !

बाली कि हाँ मैं तेज बोलती हूँ। अब जाओ ना, तुम्हीं उनके पास से पाजेब निकालकर लाते क्यों नहीं ? तब जानूँ जब पाजेब निकलवा दो।

मैंने कहा कि पाजेब से बढ़कर शांति है। और अशान्ति से तो पाजेब मिल नहीं जायगी।

श्रीमती बुदबुदाती हुई नाराज होकर मेरे सामने से चली गईं।

थोड़ी देर बाद छुन्नू की माँ हमारे घर आईं। श्रीमती उन्हें लाई थी। अब उनके बीच गर्मी नहीं थी। उन्होंने मेरे सामने आकर कहा कि छुन्नू तो पाजेब के लिए इनकार करता है। वह पाजेब कितने की थी मैं उसके दाम भर सकती हूँ।

मैंने कहा यह आप क्या कहती हैं। बच्चे-बच्चे हैं। आपने छुन्नू से सहूलियत से पूछा भी ?

उन्होंने उसी समय छुन्नू को बुलाकर मेरे सामने कर दिया। कहा कि क्यों रे, बता क्यों नहीं देता जो तैंने पाजेब देखी हो ?

छुन्नू ने जोर से सिर हिलाकर इनकार किया। और बताया कि पाजेब आशुतोष के हाथ में मैंने देखी थी और वह पतंग वाले को दे आया है। मैंने खूब देखी थी, वह चाँदी की थी।

"तुम्हें ठीक मालूम है ?"

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

"हाँ वह मुझसे कह रहा था कि तू भी चल । पतंग लायेंगे ।"

"पाजेब कितनी बड़ी थी । बताओ तो ।"

"छुन्नू ने उसका आकार बताया । जो ठीक ही था ।

मैंने उसकी माँ की तरफ देखकर कहा कि देखिए न, पहले यही कहता था कि मैंने पाजेब देखी तक नहीं । अब कहता है कि देखी है ।

माँ ने मेरे सामने छुन्नू को खींचकर तभी धम्म-धम्म पीटना शुरू कर दिया । कहा कि क्यों रे, झूठ बोलता है ? तेरी चमड़ी न उधेड़ी तो मैं नहीं ।

मैंने बीच-बचाव करके छुन्नू को बचाया । वह शहीद की भाँति पिटता रहा था । रोया बिल्कुल नहीं था, और एक कोने में खड़े आशुतोष को जाने किस भाव से वह देख रहा था ।

खैर, मैंने सबको छुट्टी दी । कहा कि जाओ बेटा छुन्नू, खेलो । उसकी माँ को कहा कि आप उसे मारियेगा नहीं । और पाजेब कोई ऐसी बड़ी चीज नहीं है ।

छुन्नू चला गया । तब उसकी माँ ने पूछा कि आप उसे कसूरवार समझते हो ?

मैंने कहा कि मालूम तो होता है कि उसे कुछ पता है । और वह मामले में शामिल है ।

इस पर छुन्नू की माँ ने पास बैठी हुई मेरी पत्नी से कहा, चलो बहनजी मैं तुम्हें अपना घर दिखाए देती हूँ । एक-एक चीज देख लो । होगी पाजेब तो जायगी कहाँ ?

मैंने कहा छोड़िए भी । बेबात की बात बढ़ाने से क्या फायदा । सो ज्यों-त्यों मैंने उन्हें दिलासा दिया । नहीं तो वह छुन्नू को पीट-पाटकर हाल बेहाल कर डालने का प्रण ही उठाए ले रही थी । कुलच्छनी, आज उसी धरती में नहीं गाड़ दिया, तो मेरा नाम नहीं ।

खैर, जिस-तिस भाँति बखेड़ा टाला । मैं इस झंझट में दफ्तर भी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

समय पर नहीं जा सका। जाते वक्त श्रीमती को कह गया कि देखो आशुतोष को धमकाना मत। प्यार से सारी बात पूछना। धमकाने से बच्चे बिगड़ जाते हैं, और हाथ कुछ नहीं आता। समझी न?

शाम को दफ्तर से लौटा तो श्रीमती ने सूचना दी कि आशुतोष ने सब बतला दिया है। ग्यारह आने पैसे में वह पाजेब पतंग वाले को दे दी है। पैसे उसने थोड़े-थोड़े करके देने को कहे हैं। पाँच आने जो दिये वह छुन्नू के पास हैं। इस तरह रत्ती-रत्ती बात उसने कह दी है।

कहने लगी कि मैंने बड़े प्यार से पूछ-पूछकर यह सब उसके पेट में से निकाला है। दो तीन घंटे मैं मगज मारती रही। हाय राम, बच्चे का भी क्या जी होता है!

मैं सुनकर खुश हुआ। मैंने कहा कि चलो अच्छा है, अब पाँच आने भेजकर पाजेब मंगा लेंगे। लेकिन यह पतंग वाला भी कितना बदमाश है, बच्चों के हाथ से ऐसी चीजें लेता है। उसे पुलिस में दे देना चाहिए। उचक्का कहीं का!

फिर मैंने पूछा कि आशुतोष कहाँ है।

उन्होंने बताया कि बाहर ही कहीं खेल-खाल रहा होगा।

मैंने कहा कि बंसी, जाकर उसे बुला तो लाओ।

बंसी गया और उसने आकर कहा कि वह अभी आते हैं।

"क्या कर रहा है?"

"छुन्नू के साथ गिल्ली-डण्डा खेल रहे हैं।"

थोड़ी देर में आशुतोष आया। तब मैंने उसे गोद में लेकर प्यार किया। आते-आते उसका चेहरा उदास हो गया था और गोद में लेने पर भी वह विशेष प्रसन्न नहीं मालूम हुआ।

उसकी माँ ने खुश होकर कहा कि हमारे आशुतोष ने सब बातें अपने आप पूरी-पूरी बता दी हैं। हमारा आशुतोष बड़ा सच्चा लड़का है!

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

आशुतोष मेरी गोद में टिका रहा। लेकिन अपनी बड़ाई सुनकर भी उसको कुछ हर्ष नहीं हुआ प्रतीत होता था।

मैंने कहा कि आओ चलो। अब क्या बात है! क्यों हजरत तुम को पाँच ही आने तो मिले हैं न? हमसे पाँच आने माँग लेते तो क्या हम न देते? सुना अब से ऐसा मत करना बेटे!

कमरे में ले जाकर मैंने उससे फिर पूछताछ की—"क्यों बेटा पतंग वाले ने पाँच आने तुम्हें दिये न?"

"हाँ"।

"और वह छुन्नू के पास हैं?"

"हाँ"।

"अभी तो उसके पास होंगे न?

"नहीं।"

"खर्च कर दिए?"

"नहीं।"

"नहीं खर्च किये?"

"हाँ।"

"खर्च किये, कि नहीं खर्च किये?"

"उस ओर से प्रश्न करने पर वह मेरी ओर देखता रहा, उत्तर नहीं दिया।

"बताओ खर्च कर दिये कि अभी हैं?"

जवाब में उसने एक बार 'हाँ' कहा तो दूसरी बार 'नहीं' कहा।

मैंने कहा कि तो यह क्यों नहीं कहते कि तुम्हें नहीं मालूम है?

"हाँ।"

"बेटा मालूम है न?"

"हाँ।"

"पतंग वाले से पैसे छुन्नू ने लिये हैं न?"

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

"हाँ।"

"तुमने क्यों नहीं लिये ?"

वह चुप।

"पाँचों इकन्नी थीं, या दुअन्नी और पैसे भी थे ?"

वह चुप।

"बतलाते क्यों नहीं हो ?"

चुप !

"इकन्नियाँ कितनी थीं, बोलो ?"

"दो।"

"बाकी पैसे थे ?"

"हाँ।"

दुअन्नी नहीं थी ?"

"हाँ।"

"दुअन्नी थीं ?"

"हाँ।"

मुझे क्रोध आने लगा। डपटकर कहा कि सच क्यों नहीं बोलते जी ? सब बताओ ? कितनी इकन्नियाँ थीं और कितना क्या था।

वह गुम-सुम खड़ा रहा, कुछ नहीं बोला।

"बोलते नहीं ?"

वह नहीं बोला।

"सुनते हो ! बोलो—नहीं तो—"

"आशुतोष डर गया। और कुछ नहीं बोला।

"सुनते नहीं, मैं क्या कह रहा हूँ ?"

इस बार भी वह नहीं बोला तो मैंने पकड़कर उसके कान खींच लिये। वह बिना आँसू लाये गुम-सुम खड़ा रहा।

"अब भी नहीं बोलोगे ?"

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

वह डर के मारे पीला हो आया। लेकिन बोल नहीं सका। मैंने जोर से बुलाया—"बंसी यहाँ आओ, इसको ले जाकर कोठरी में बंद कर दो।"

बंसी नौकर उसे उठाकर ले गया और कोठरी में मूंद दिया।

दस मिनट बाद मैंने फिर उसे बुलवाया। उसका मुँह सूजा हुआ था। बिना कुछ बोले उसके ओंठ हिल रहे थे। कोठरी में बंद होकर भी वह रोया नहीं।

मैंने कहा क्यों रे, अब तो अकल आई ?

वह सुनता हुआ गुम-सुम खड़ा रहा।

"अच्छा पतंग वाला कौनसा है ? दाईं तरफ का वह चौराहे वाला ? उसने कुछ ओंठों में ही बड़बड़ा दिया। जिसे मैं कुछ न समझ सका।"

'वह चौराहे वाला ? बोलो—"

"हाँ।"

"देखो अपने चाचा को साथ ले जाओ। बता देना कि कौनसा है। फिर वह उससे स्वय भुगत लेंगे। समझते हो न ?"

यह कहकर मैंने अपने भाई को बुलवाया। सब बात समझाकर कहा देखो पाँच आने के पैसे ले जाओ। पहले तुम दूर हः रहना। आशुतोष पैसे ले जाकर उसे देगा और अपनी पाजेब माँगेगा। अव्वल तो वह पाजेब लौटा ही देगा। नहीं तो उसे डाँटना और कहना कि तुझे पुलिस के सुपुर्द कर दूँगा। बच्चों को चोरी सिखाता है ? बच्चों से माल ठगता है ? समझे ! नरमी की जरूरत नहीं है।

"और आशुतोष अब जाओ अपने चाचा के साथ जाओ।" वह अपनी जगह पर खड़ा था। सुनकर भी टस-से-मस होता दिखाई नहीं दिया।

"नहीं जाओगे ?"

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

उसने सिर हिला दिया कि नहीं जाऊँगा।

मैंने तब उसे समझाकर कहा कि भैया घर की चीज है, दाम लगे हैं। भला पाँच आनों में रुपयों का माल किसी के हाथ खो दोगे। जाओ चाचा के संग जाओ। तुम्हें कुछ नहीं कहना होगा। हाँ पैसे दे देना और अपनी चीज वापस माँग लेना। दे दे, नहीं दे, नहीं दे। तुम्हारा इससे सरोकार नहीं। सच है न बेटे! अब जाओ।

पर वह जाने को तैयार हो नहीं दीखा। मुझे उस लड़के की गुस्ताखी पर बड़ा बुरा मालूम हुआ। बोलो इसमें बात क्या है। इसमें मुश्किल कहाँ है? समझाकर बात कर रहे हैं तो समझता ही नहीं, सुनता ही नहीं।

मैंने कहा कि क्यों रे नहीं जायगा?

उसने फिर सिर हिला दिया कि नहीं जाऊँगा।

मैंने प्रकाश, अपने छोटे भाई, को बुलाया। कहा प्रकाश, इसे पकड़ कर ले जाओ।

प्रकाश ने उसे पकड़ा और आशुतोष अपने हाथ-पैरों से उसका प्रतिकार करन लगा। वह साथ जाना नहीं चाहता था।

मैंने अपने ऊपर बहुत जब्र करके फिर आशुतोष को पुचकारा—कहा कि जाओ भाई! डरो नहीं। अपनी चीज घर में आयगी। इतनी-सी बात समझते नहीं। प्रकाश इसे गोदी में ले जाओ और जो चीज माँगे उसे बाजार से दिलवा देना। जाओ भाई आशुतोष।

पर उसका मुँह फूला हुआ था। जैसे-तैसे बहुत समझाने पर वह प्रकाश के साथ चला। ऐसे चला मानो पैर उठाना उसे भारी हो रहा हो। आठ बरस का यह लड़का होने आया फिर भी देखो न कि किसी भी बात की उसमें समझ नहीं है। मुझे जो गुस्सा आया तो क्या बतलाऊँ। लेकिन यह याद करके कि गुस्से से बच्चे सँभलने की जगह बिगड़ते हैं मैं अपने को दबाता चला गया। खैर वह गया तो मैंने चैन की साँस ली।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

लेकिन देखता क्या हूँ कि कुछ देर में प्रकाश लौट आया है।

मैंने पूछा क्यों ?

बोला कि आशुतोष भाग आया है।

मैंने कहा कि अब वह कहाँ है ?

"वह रूठा खड़ा है, घर में नहीं आता।"

"जाओ पकड़ कर तो लाओ।"

वह पकड़ा हुआ आया। मैंने कहा क्यों रे, तू शरारत से बाज नहीं आयगा ? बोल, जायगा कि नहीं ?

वह नहीं बोला तो मैंने कसकर उसे दो चाँटे दिये। थप्पड़ लगते ही वह एक दम चीखा पर फौरन चुप हो गया। वह वैसे ही मेरे सामने खड़ा रहा।

मैंने उसे देखकर मारे गुस्से से कहा कि ले जाओ इसे मेरे सामने से। जाकर कोठरी में बन्द कर दो। दुष्ट !

इस बार वह आध-एक घण्टे बन्द रहा। मुझे ख्याल आया कि मैं ठीक नहीं कर रहा हूँ; लेकिन जैसे कि दूसरा रास्ता न दीखता था। मार पीट कर मन को ठिकाना देने की आदत पड़ गई थी, और कुछ अभ्यास न था।

खैर मैंने इस बीच प्रकाश से कहा कि तुम दोनों पतंग वालों के पास जाओ। मालूम करना कि किसने पाजेब ली है। होशियारी से मालूम करना। मालूम होने पर फिर सख्ती करना। मुरव्वत की जरूरत नहीं। समझे।

प्रकाश गया पर लौटने पर बताया कि किसी के पास पाजेब नहीं है।

सुनकर मैं झल्ला आया, कहा कि तुमसे कुछ काम नहीं हो सकता। जरा सी बात नहीं हुई, तुमसे क्या उम्मीद रखी जाय ?

वह अपनी सफाई देने लगा। मैंने कहा बस तुम जाओ।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

प्रकाश मेरा बहुत लिहाज मानता था। वह मुँह डालकर चला गया। कोठरी खुलवाने पर आशुतोष को फर्श पर सोता पाया। उसके चेहरे पर अब भी आँसू नहीं थे। सच पूछो तो मुझे उस समय बालक पर करुणा हुई। लेकिन आदमी में एक ही साथ क्या-क्या विरोधी भाव उठते हैं!

मैंने उसे जगाया। वह हड़बड़ाकर उठा। मैंने कहा कहो क्या हाल है।

थोड़ी देर तक वह समझा ही नहीं। फिर शायद पिछला सिलसिला याद आया। झट उसके चेहरे पर वही जिद, अकड़ और प्रतिरोध के भाव दिखाई देने लगे।

मैंने कहा कि या तो राजी-राजी चले जाओ नहीं तो इस कोठरी में फिर बन्द किए देते हैं।

आशुतोष पर इसका विशेष प्रभाव पड़ा हो ऐसा नहीं मालूम हुआ।

खैर, उसे पकड़ कर लाया और समझाने लगा। मैंने निकालकर उसे एक रुपया दिया और कहा, बेटा, इसे पतंग वाले को देना और पाजेब माँग लेना। कोई घबराने की बात नहीं। तुम तो समझदार लड़के हो।

उसने कहा कि जो पाजेब उसके पास नहीं हुई तो वह कहाँ से देगा?

'इसका क्या मतलब, तुमने कहा न कि पाँच आने में पाजेब दी है? न हो छुन्नू को भी साथ ले लेना। समझे?

वह चुप हो गया। आखिर समझाने पर जाने को तैयार हुआ। मैंने प्रेमपूर्वक उसे प्रकाश के साथ जाने को कहा। उसका मुँह भारी देखकर डाँटने वाला ही था कि इतने में सामने उसकी बूआ दिखाई दी।

बूआ ने आशुतोष के सिर पर हाथ रखकर पूछा कि कहाँ जा रहे

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

हो, मैं तो तुम्हारे लिये केले और मिठाई लाई हूँ।

आशुतोष का चेहरा रूठा ही रहा। मैंने बूआ से कहा उसे रोको मत, जाने दो।

आशुतोष रुकने को उद्यत था। वह चलने में आनाकानी दिखाने लगा।

बूआ ने पूछा क्या बात है ?

मैंने कहा कोई बात नहीं जाने न दो उसे।

पर आशुतोष मचलने पर आ गया था। मैंने कहा, प्रकाश इसे ले क्यों नहीं जाते हो।

बूआ ने कहा बात क्या है ? क्या बात है ?

मैंने पुकारा तू बन्सी—भी साथ जा। बीच से लौटने न पावे।

सो मेरे आदेश पर दोनों आशुतोष को जबरदस्ती उठाकर सामने से ले गए।

बूआ ने कहा "क्यों उसे सता रहे हो ?"

मैंने कहा कि कुछ नहीं, जरा यों ही —

फिर मैं उनके साथ इधर-उधर की बातें ले बैठा। राजनीति राष्ट्र की ही नहीं होती मुहल्ले में भी राजनीति होती है। यह भार स्त्रियों पर टिकता है। कहाँ क्या हुआ, क्या होना चाहिए इत्यादि चर्चा स्त्रियों को लेकर रंग फैलाती है। इस प्रकार की बातें हुईं, फिर छोटा-सा बक्सा सरका कर बोली, इसमें वह कागज हैं जो तुमने मांगे थे। और हाँ—

यह कहकर उन्होंने अपनी बास्कट की जेब में हाथ डालकर पाजेब निकाल कर सामने की। जैसे सामने बिच्छू हो मैं भयभीत भाव से कह उठा कि यह क्या ?

बोली कि उस रोज भूल से यह एक पाजेब मेरे साथ ही चली गई थी।

———

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

प्रायश्चित्त

[श्री भगवतीचरण वर्मा]

अगर कबरी बिल्ली घर भर में किसी से प्रेम करती थी तो रामू की बहू से, और रामू की बहू घर भर में किसो से घृणा करती थी तो कबरी बिल्ली से। रामू की बहू दो महीना हुआ मायके से प्रथम बार ससुराल आई थी, पति की प्यारी और सास की दुलारी, चौदह वर्ष की बालिका। भंडार-घर की चाभी उसकी करधनो में लटकने लगी, नौकर पर उसका हुक्म चलने लगा, और रामू की बहू घर में सब कुछ; सास ने माला ली और पूजा-पाठ में मन लगाया।

लेकिन ठहरी चौदह वर्ष की बालिका, कभी भंडार-घर खुला है, तो कभी भंडार-घर में, बैठे-बैठे सो गई। कबरी बिल्ली को मौका मिला, घी-दूध पर अब वह जुट गई! रामू की बहू की जान आफत में और कबरी बिल्ली के छक्के-पंजे। रामू की बहू हांड़ी में घी रखते-रखते ऊँघ गई और बचा हुआ कबरी के पेट में। रामू की बहू दूध ढक कर मिसरानी को जिन्स देने गई और दूध नदारद। अगर बात यह यहीं तक रह जाती तो भी बुरा न था, कबरी रामू की बहू से कुछ ऐसा परक गई कि रामू की बहू के लिए खाना-पीना दुश्वार। रामू की बहू के कमरे में रबड़ी से भरी हुई कटोरी पहुँचो और रामू जब आये तब कटोरी साफ चटी हुई। बाजार से मलाई आई और जब तक रामू की बहू ने पान लगाया, मलाई गायब। रामू की बहू ने तै कर लिया कि या तो वही घर में रहेगी या कबरी बिल्ली ही। मोरचाबन्दी हो गई और दोनों सतर्क। बिल्ली फँसाने का कटघरा आया, उस में दूध मलाई, चूहे और भी बिल्लो को स्वादिष्ट लगने वाले विविध प्रकरा

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

के व्यञ्जन रखे गये, लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली। इधर कबरी ने सरगर्मी दिखलाई। अभी तक तो वह रामू की बहू से डरती थी; पर अब वह साथ लग गई, लेकिन इतने फासिले पर कि रामू की बहू उसपर हाथ न लगा सके।

कबरी के हौसले बढ़ जाने से रामू की बहू को घर में रहना मुश्किल हो गया। उसे मिलती थीं सास की मीठी झिड़कियाँ और पतिदेव को रूखा-सूखा भोजन।

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिये खीर बनाई। पिस्ता, बादम, मखाने और तरह-तरह के मेवे दूध में औंटे गये, सोने का वर्क चिपकाया गया और खीर से भरकर कटोरा कमरे के एक ऐसे ऊँचे ताक पर रखा गया, जहाँ बिल्ली न पहुँच सके। रामू की बहू इसके बाद पान लगाने में लग गई।

उधर कमरे में बिल्ली आई, ताक के नीचे खड़े होकर उसने ऊपर कटोरे की ओर देखा, सूँघा माल अच्छा है, ताक की ऊँचाई अन्दाजी और रामू की बहू पान लगा रही है। पान लगा कर रामू की बहू सास जी को पान देने चली गई और कबरी ने छलांग मारी, पंजा कटोरे में लगा और झनझनाहट की आवाज के साथ फर्श पर।

आवाज रामू की बहू के कान में पहुँची, सास के सामने पान फेंक कर वह दौड़ी, क्या देखती है कि फूल का कटोरा टुकड़े-टुकड़े, और खीर फर्श पर और बिल्ली डट कर खीर उड़ा रही है। रामू की बहू को देखते ही कबरी चम्पत।

रामू की बहू पर खून सवार हो गया, न रहे बाँस न बजे बाँसुरी। रामू की बहू ने कबरी की हत्या पर कमर कस ली। रात भर उसे नींद न आई, किस दाँव से कबरी पर वार किया जाय कि फिर जिन्दा न बचे, यही पड़े-पड़े सोचती रही। सुबह हुई और वह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उसे देख रही है।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

रामू की बहू ने कुछ सोचा, इसके बाद मुस्कराती हुई वह उठी, कबरी रामू की बहू के उठते ही खिसक गई। रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे के दरवाजे की देहरी पर रखकर चली गई। हाथ में पाटा लेकर वह लौटी तो देखती है कि कबरी दूध पर जुटी हुई है। मौका हाथ में आ गया। सारा बल लगाकर पाटा उसने बिल्ली पर पटक दिया। कबरी न हिली न डुली न चीखी न चिल्लाई, बस एकदम उलट गई।

आवाज जो हुई तो महरी झाड़ू छोड़कर, मिसरानी रसोई छोड़कर और सास पूजा छोड़कर घटनास्थल पर उपस्थित हो गईं। रामू की बहू सर झुकाये हुये अपराधिनी की भाँति बातें सुन रही है।

महरी बोलीं—अरे राम, बिल्ली तो मर गई। माजी बिल्ली की हत्या बहू से हो गई, यह तो बुरा हुआ।

मिसरानी बोली—माँजी, बिल्ली की हत्या और आदमी की हत्या बराबर है। हम तो रसोई न बनावेंगी, जब तक बहू के सिर हत्या रहेगी।

सासजी बोलीं—हाँ ठीक कहती हो, अब जब तक बहू के सिर से हत्या न उतर जाय तब तक न कोई पानी पी सकता है, न खाना खा सकता है, बहू यह क्या कर डाला!

महरी ने कहा—फिर क्या हो, कहो तो पण्डितजी को बुला लाऊँ।

सास की जान में जान आई—अरे हाँ, जल्दी दौड़ के पण्डितजी को बुला लो।

बिल्ली की हत्या की खबर बिजली की तरह पड़ोस में फैल गई। पड़ौस की औरतों का रामू के घर में ताँता बँध गया। चारों तरफ से प्रश्नों की बौछार और रामू की बहू सिर झुकाये बैठी।

पण्डित परमसुख को जब यह खबर मिली उस समय वे पूजा कर

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

रहे थे। खबर पाते ही वे उठ पड़े। पण्डिताइन से मुसकराते हुए बोले—भोजन न बनाना। लाला घासीराम की पतोहू ने बिल्ली मार डाली। प्रायश्चित होगा, पकवानों पर हाथ लगेगा।

पण्डित परमसुख चौबे छोटे-से मोटे-से, आदमी थे। लम्बाई चार फिट दस इञ्च, और तोंद का घेरा अट्ठावन इञ्च। चेहरा गोल-मटोल, मूँछ बड़ी-बड़ी, रंग गोरा, चोटी कमर तक पहुँचती हुई।

कहा जाता है कि मथुरा में जब पंसेरी खुराक वाले पण्डितों को ढूँढ़ा जाता था तो पण्डित परमसुखजी को इस लिस्ट में प्रथम स्थान दिया जाता था।

पण्डित परमसुख पहुँचे, और कोरम पूरा हुआ। पंचाइत बैठी—सासजी, मिसरानी, किशनू की माँ, छन्नू की दादी और पण्डित परमसुख! बाकी स्त्रियाँ बहू से सहानुभूति प्रकट कर रही थीं।

किसनू की माँ ने कहा— पण्डितजी, बिल्ली की हत्या करने से कौन नरक मिलता है?

पण्डित परमसुख ने पत्रा देखते हुए कहा—बिल्ली की हत्या अकेले से तो नरक का नाम नहीं बतलाया जा सकता, वह महूरत भी जब मालूम हो जाय जब बिल्ली की हत्या हुई तब नरक का पता लग सकता है।

'यह कोई सात बजे।'—मिसरानीजी ने कहा।

पण्डित परमसुख ने पत्रे के पन्ने उलटे, अक्षरों पर उँगलियाँ चलाईं, मत्थे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा। चेहरे पर धुँधलापन आया। माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सिकुड़ी और स्वर गम्भीर हो गया—हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! बड़ा बुरा हुआ, प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त्त में बिल्ली की हत्या! घोर कुम्भीपाक नरक का विधान! रामू की माँ, यह तो बड़ा बुरा हुआ।

रामू की माँ की आँखों में आँसू आ गये—तो फिर पण्डितजी, अब क्या होगा; आप ही बतलायें?

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पण्डित परमसुख मुस्कराये—रामू की माँ, चिन्ता की कौन-सी बात है, हम पुरोहित फिर कौन दिन के लिए हैं ? शास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान हैं, सो प्रायश्चित्त से सब कुछ ठीक हो जायगा ।

रामू की माँ ने कहा—पण्डितजी, उसी के लिए तो आपको बुलवाया था अब आगे बतलाओ कि क्या किया जाय ?

'किया क्या जाय—यही एक सोने की बिल्ली बनवाकर बहू से दान करवा दी जाय—जब तक बिल्ली न दे दी जायगी तब तक तो घर अपवित्र रहेगा, बिल्ली दान देने के बाद इक्कीस दिन का पाठ हो जाय ।'

छन्नू की दादी—हाँ और क्या, पण्डितजी तो ठीक कहते हैं; बिल्ली अभी दान दे दी जाय और पाठ फिर हो जाय ।

रामू की माँ ने कहा—तो पण्डितजी कितने तोले की बिल्ली बनवाई जाय ?

पण्डित परमसुख मुस्कराये, अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुये उन्होंने कहा—बिल्ली कितने तोले की बनवाई जाय ? अरे रामू की माँ शास्त्रों में तो लिखा है कि बिल्ली के वजन भर सोने की बिल्ली बनवाई जाय । लेकिन अब कलियुग आ गया है, धर्म-कर्म का नाश हो गया है, श्रद्धा नहीं रही । सो रामू की माँ, बिल्ली के तौल की बिल्ली तो क्या बनेगी, क्योंकि बिल्ली बीस इक्कीस सेर से कम की क्या होगी; हाँ कम से कम इक्कीस तोले की बिल्ली बनवा के दान करवा दो, और आगे तो अपनी-अपनी श्रद्धा !

रामू की माँ ने आँखें फाड़कर पण्डित परमसुख को देखा—अरे बाप रे ! इक्कीस तोला सोना ! पण्डित, यह तो बहुत है, तोला भर की बिल्ली से काम न निकलेगा ?

पण्डित परमसुख हँस पड़े—रामू की माँ ! एक तोला सोने की बिल्ली ! अरे रुपये का लोभ बहू से बढ़ गया । बहू के सिर बड़ा पाप है—इसमें इतना लोभ ठीक नहीं !

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

मोल-तोल शुरू हुआ और मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया।

इसके बाद पूजा-पाठ की बात आई। पण्डित परमसुख ने कहा—उसमें क्या मुश्किल है; हम लोग किस दिन के लिए हैं। रामू की माँ, मैं पाठ कर दिया करूँगा, पूजा की सामग्री आप हमारे घर भिजवा देना।

'पूजा का सामान कितना लगेगा ?'

'अरे कम से कम सामान में हम पूजा कर देंगे, दान के लिए करीब दस मन गेहूँ, एक मन चावल, एक मन दाल, मन भर तिल, पाँच मन जौ, और पांच मन चना, चार पसेरी घी, और मन-भर नमक भी लगेगा बस इतने में काम चल जायेगा।'

'अरे बाप रे! इतना समान, पण्डितजी, इसमें तो सौ डेढ़ सौ रुपया खर्च हो जायेगा।' रामू की माँ ने रुआसी होकर कहा।

फिर इससे कम में तो काम न चलेगा। बिल्ली की हत्या कितना बड़ा पाप है रामू की माँ! खर्च को देखते वक्त पहिले बहू के पाप को तो देख लो। यह तो प्रायश्चित्त है, कोई हँसी-खेल थोड़े ही है—और जैसा जिसकी मरजादा, प्रायश्चित्त में उसे वैसा खर्च भी करना पड़ता है। आप लोग कोई ऐसे थोड़े हैं, अरे सौ-डेढ़-सौ रुपया आप लोगों के हाथ का मैल है।

पण्डित परमसुख की बात से पंच प्रभावित हुए, किशनु की मां ने कहा—पण्डितजी ठीक तो कहते हैं, बिल्ली की हत्या कोई ऐसा-वैसा पाप तो नहीं है—बड़े पाप के लिए बड़ा खर्च भी चाहिए।

छन्नू की दादी ने कहा—और नहीं तो क्या, दान-पुन्न से ही पाप कटते हैं। दान-पुन्न में किफायत ठीक नहीं

मिसरानी ने कहा—और फिर मांजी, आप लोग बड़े आदमी ठहरे इतना खर्च कौन आप लोगों को अखरेगा।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

रामू की माँ ने अपने चारों ओर देखा—सभी पंच पण्डित जी के साथ। पण्डित परमसुखजी मुसकरा रहे थे। उन्होंने कहा–रामू की मां एक तरफ तो बहू के लिए कुम्भीपाक नरक है और दूसरी तरफ तुम्हारे जिम्मे थोड़ा-सा खर्च है। सो उससे मुँह न मोड़ो।

एक ठंडी सांस लेते हुए रामू की मां ने कहा, अब तो जो नाच नचाओगे, नाचना ही पड़ेगा।

पण्डित परमसुख जरा कुछ बिगड़ कर बोले—रामू की माँ! यह तो खुशी की बात है, अगर तुम्हें यह अखरता है तो न करो—मैं चला। इतना कहकर पण्डितजी ने पोथी पत्रा बटोरा।

'अरे पण्डितजी; रामू की माँ को कुछ नहीं अखरता—बेचारी को कितना दुःख है—बिगड़ो न'—मिसरानी, छन्नू की दादी और किसनू की माँ ने एक स्वर में कहा।

रामू की माँ ने पण्डितजी के पैर पकड़े—और पण्डितजी ने अब जमकर आसन जमाया।

'और क्या हो।'

एक्कीस दिन के पाठ के एक्कीस रुपये और एक्कीस दिन तक दोनों वखत पाँच-पाँच ब्राह्मणों को भोजन करवांना पड़ेगा।—कुछ रुककर पण्डित परमसुख ने कहा—सो इसकी चिन्ता न करो, मैं अकेले दोनों समय भोजन कर लूँगा और मेरे अकेले भोजन करने से पाँच ब्राह्मण के भोजन का फल मिल जायेगा।

'यह तो पण्डितजी ठीक कहते हैं, पण्डितजी की तोद तो देखो मिसरानी ने मुस्कराते हुए पण्डितजी पर व्यंग किया।

'अच्छा तो फिर प्रायश्चित्त का प्रबन्ध करवाओ रामू की माँ, ग्यारह तोला सोना निकालो, मैं उसकी बिल्ली बनवा लाऊँ—दो घण्टे में मैं बनवाकर लौटूँगा तब तक सब पूजा का प्रबन्ध कर रखो—और देखो, पूजा के लिए ....।'

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पण्डित जी की बात खतम भी न हुई थी कि महरी हाँफती हुई कमरे में घुस आई और सब लोग चौंक उठे। रामू की माँ ने घबड़ाकर कहा—अरी क्या हुआ री !

महरी ने लड़खड़ाते स्वर में कहा—माँजी, बिल्ली तो उठ कर भाग गई।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

विधवा

[श्री ज्वालादत्त शर्मा]

—१—

राधाचरण की अकाल-मृत्यु से उसके चाचा-चाची को बहुत शोक हुआ। किन्तु अभागिनी पार्वती के लिये तो यह संसार ही अन्धकार-मय हो गया। उसके लिये तो संसार में आशा, उत्साह और सुख का सोलहो आने नाश हो गया। उसने इस घोर दुःख को, इस अनभ्र वज्रपात को, दिल का खून करके, किसी तरह सहन किया। वह न रोई न चिल्लाई। उसने इस असह्य दुःख को मन की पूरी ताकत से चुपचाप सहन किया। शोक के भारी बोझ से पार्वती का सुकोमल मन निस्सन्देह चूर-चूर हो गया। किन्तु विधि के इस विपरीत विधान में किसी का क्या वश था।

राधाचरण के चाचा रामप्रसाद औसत दर्जे के आदमी थे। राधा-चरण के पिता, गुरुप्रसाद का देहान्त, जब उसकी अवस्था पाँच वर्ष की थी, तभी हो गया था। सुनीति माता भी पति की मृत्यु के एक वर्ष बाद ही स्वर्गलोक-गामिनी हो गयी थी। इसलिये बालक राधा-चरण का पालन-पोषण चचा रामप्रसाद और उनकी पत्नी हरदेवी ने ही किया था। उसके पास कुछ पैतृक मिलकियत थी, जिसकी आमदनी से घर का खर्च चलता था। रहने का पक्का मकान था। पर इस पैतृक मिलकियत और रहने के मकान में जायदाद के क्षय रोग कर्जे के कीटाणुओं ने प्रवेश कर लिया था। रामप्रसाद ने अपनी कन्या चमेली के विवाह में शहर के मूर्ख और निठल्ले आदमियों के मुँह से चिकनी-चुपड़ी बातें सुनने के लिये बहुत रुपया बरबाद किया था। विवाह के बाद, कोई एक सप्ताह तक, पकवान की सुगन्धि के साथ-साथ रामप्रसाद

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

की इस मूर्खतापूर्ण उदारता की बू भी महल्ले में सर्वत्र और शहर में यत्र-तत्र, फैल रही थी। खस्ता कचौरी, मोतीचूर के लड्डू, गोल बालूशाही, कुरकरी इमरती और मसालेदार तरकारियों के साथ-साथ चमकते हुए 'इन्दु-सम-उज्ज्वल' रूपराजे की दक्षिणा की बात जहाँ-तहाँ होती थी। किन्तु रामप्रसाद के यश की उस स्निग्ध चाँदनी में उसके विमल यश की सफेद चादर में, कोई कलंक न हो, कोई धब्बा न हो, सो बात नहीं। दुष्ट समालोचक, जिन्होंने ज्यौनार में कई दिनों पहले से अल्पाहार करते रहने के कारण, बुरी तरह खस्ता कचौरी और मेवा मिली मुलायम मिठाइयों का ध्वंस किया था, अपने दुष्ट पर प्रकृतिदत्त स्वभाव से मजबूर होकर बाल-की-खाल निकालने और रामप्रसाद की दूध की गंगा में विष मिलाने लगे। कोई कहता था—'कचौरियों में मोयन कम डाला गया', और कोई बताता था कि 'शाक में नोन ज्यादा हो गया था!' कोई लड्डुओं की बूँदी को ठोस, तो कोई बेसन की बरफी को सख्त करार देता था। मतलब यह, कि रामप्रसाद की मूर्खता का श्राद्ध करनेवाले नर-पुङ्गवों की भी कमी न थी। किन्तु घरों की मालकिनें जिन्होंने अपने बच्चों से रुपये छीनकर बटुओं में भर लिये थे, और इस तरह एक अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव किया था, रामप्रसाद की प्रशंसा अपनी प्रलयङ्करी बुद्धि की सहायता से शत-शत मुख से कर रही थीं। इस प्रशंसा-रूप बीमारी का दौरा भी एक महीने से अधिक न रहा। हलवाइयों के हिसाब के साफ होते ही लोगों के बेकार अतएव खाली दिमाग भी इस खफ्त से खाली हो गये। छः मास के बाद रामप्रसाद के उसकाने पर भी किसी को लड्डुओं की बूंदियों में तरावट न मालूम होती थी—कोई विषय का उत्थान न करता था। इससे रामप्रसाद के श्लाघा सुनने की अभिलाषा पर तुषार पात हो जाया करता था, किन्तु उसी आशालता को पल्लवित करनेवाला सूदखोर छज्जूमल महाजन 'पड़ोस' का हक़ करीब-करीब रोज निभा देता था।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

जिस साल रामप्रसाद की लड़की चमेली का विवाह हुआ था उसी साल राधाचरण बी० ए० में तीसरे नम्बर पर पास हुआ था। राधाचरण को स्कूल से ही, उसकी योग्यता के कारण, छात्र-वृत्ति मिली थी। पर बी० ए० की फीस और किताबों के लिये चचा रामप्रसाद ने १५०) उसे जरूर दिये थे। उसी साल 'गरीब नवाज' लाला छज्जूमल ने यथानियम अगले-पिछले जोड़कर रामप्रसाद से पाँच हजार रुपयों की दस्तावेज लिखाकर उसकी 'इज्जत' बचाई थी। कोई तीन हजार रुपये उसने लड़की के विवाह में स्वाहा किये थे। किन्तु कर्ज का प्रसंग उठते ही रामप्रसाद भतीजे की पढ़ाई का उल्लेख करते थे। उनके हिसाब से यदि राधाचरण न पढ़ता, तो उन्हें ऋणी न बनना पड़ता। छोटी-छोटी बातों पर रामप्रसाद राधाचरण से कहते—"अभी तूने मेरी क्या सेवा की है? एक साल से पचास रुपये महीना कमाने लगा है। मुझे देख, तेरी पढ़ाई के कारण ही तबाह हो गया। इतना देना हो गया।

सुशील राधाचरण अपने मूर्ख चचा की बात का उत्तर न देता था। नीची गर्दन करके वह सब-कुछ सुन लेता था।

राधाचरण की मृत्यु से चचा और चची को बेशक बहुत दुःख हुआ, पर उस दुःख की तीव्र आग में जलते हुए भी रामप्रसाद ने राधाचरण के कारण कर्जदारी का जिक्र करने की प्रवृत्ति को बड़े यत्न से सुरक्षित रक्खा।

—२—

शोक की प्रबल लहरों में बहते हुए रामप्रसाद दम्पति ने अपने धेवते का सहारा पाकर बहुत कुछ शान्ति-लाभ किया। भाद्रपद की वर्षा के बाद जिस तरह सूर्य्य और अधिक असह्य हो उठता है, उसी तरह शोक-सागर में स्नान करके रामप्रसाद दम्पति का कठोर हृदय और सख्त हो गया। अब वे बात-बात में कहते थे—"राधे हमें मार गया। वह हमारा भतीजा नहीं, शत्रु था! हमें बरबाद करने आया था।"

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पार्वती शोक-महानदी की जिस प्रबल लहर में बही जा रही थी, उसमें तिनके का भी सहारा नहीं था। वह थी, और अनन्त शोक की लहरें थी। उसके भाद्रपद के तरुण सूर्य की प्रखर धूप उत्तापहीन थी—प्रकाश हीन थी। शरत्काल के लुभावने चन्द्रमा की चिकनी चाँदनी उसके लिये सिंह के सूर्य की धूप से भी कहीं अधिक प्रखर थी। उसके मन में शोक की प्रचण्ड अग्नि धू-धू- जल रही थी। बाहर रामप्रसाद-दम्पति का कठोर व्यवहार उस अबला को बेदम किये देता था। शोक की अनन्त ज्वाला में अनन्त विरह के प्रचण्ड अनल में, निराशा के घने अन्धकार में, उपेक्षा के दुर्गन्धिपूर्ण संसार में—सब कहीं उसे परलोक-गत पति का पूत और पवित्र मुख-पद्म दिखाई देता था, मानो वह उससे मौन भाषा में कहता था—"प्रिये पार्वती, धैर्य्य धारण करो, त्रिताप-दग्ध संसार में जब तक हो, जैसे बने, काल-यापन कर दो। स्वर्ग में मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मैं तुम्हें अवश्य मिलूँगा; क्योंकि तुम मेरी हो, और मैं तुम्हारा हूँ।"

पार्वती का छलनी की तरह छिदा हुआ हृदय शान्त हो जाता था। रामप्रसाद-दम्पति का कठोर व्यवहार उसके लिये सुकोमल हो जाता था। संसार भी उसकी दृष्टि में उतनी घृणा का पात्र नहीं रहता था; उस पर से उसकी विरक्ति की मात्रा कम हो जाती थी। संसार के अन्तरिक्ष में ही, इसी संसार के आकाश में ही, उसके परलोकवासी पति के प्रभावपूर्ण मुख का प्रतिबिम्ब मध्याकाश में न सही, हृदयाकाश में ही सही—दिखाई पड़ता था। इसलिये संसार उसके लिये उतना हेय नहीं रहता था; कुछ काम की चीज हो जाता था।

सास के कुलिशसम कठोर वाक्यों और उससे भी बढ़कर परुष-तर पार्थिव व्यवहारों को वह अनायास सह लेती थी। मृत्यु-शय्या पर पड़े पति के ज्योतिर्हीन नेत्रों का कातर भाव उसे कभी न भूलता था। उसके आखिरी शब्द—'प्रिये पार्वती'—आज भी उसके कानों में गूंज रहे थे।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

उस कातर भाव की शब्द-हीन भाषा का मर्म भी उसने ठीक-ठीक समझ लिया था। चचा-चची का कठोर स्वभाव और पार्वती के पीसाल की शोचनीय अवस्था ही उस कातर भाव का प्रधान उपादान थी।

पार्वती हिन्दी-मिडिल-पास थी। राधाचरण ने बड़े आग्रह से उसे अँगरेजी भी पढ़ाई थी। उसका विचार था कि वह उससे प्रवेशिका-परीक्षा दिलायेगा; किन्तु उसकी अकाल-मृत्यु ने बहुत-सी अन्य बातों के साथ-साथ इस विचार को भी कार्य में परिणत न होने दिया।

पति की मृत्यु के बाद अभागिनी पार्वती को पुस्तक छूने का मौका ही न मिलता था। घर में उसकी कोई सत्ता ही न थी! सास राधाचरण की मृत्यु का कारण उसे ही समझती थी। पार्वती अन्न पीसती है, चौका बरतन साफ करती है, भोजन बनाती है; किन्तु फिर भी सास-ससुर की सहानुभूति का पात्र नहीं बनती। फिर भी उनके मुँह से कभी मीठी बात नहीं सुनती। सुनती है, कर्जदारी का कारण, अपने दुर्भाग्य की गाथा, और कभी-कभी गूढ़ प्रेम के परदे में पति की निन्दा।

पार्वती को कुटिलता-पूर्ण संसार में सहानुभूति का चिह्न कहीं दिखाई न देता था। उसके एक चचेरा भाई था; वह कहीं चपरासी था, पर था विवाहित! इसलिये गरीबी का मारा सन्तान की बहुतायत से माला-माल था। अत्यन्त गर्मी पड़ने के बाद वर्षा होती है। बहुत तप चुकने पर धराधाम जल की अनन्त धाराओं से प्लावित हो जाता है। पार्वती ने भी निराशा के घोर अन्धकार में, सास-ससुर के कठोर व्यवहार-रूप नरक में, उपेक्षा के समुद्र में, शोक के महासागर में ध्रुवतारे का दर्शन किया, उसे देखकर दिग्भ्रष्टा पार्वती ने कर्त्तव्य-पथ का निश्चय कर लिया। सामने खड़ी आलमारी में भरी हुई पुस्तकें उसे मानों अपनी-अपनी भाषा में सान्त्वना देने लगीं। वह कहने लगीं—"पार्वती, तू लिखी-पढ़ी है, हम तेरी साथिन हैं। दुःख में, शोक में, सन्ताप में सदा-सर्वदा

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

हम तेरी साथिन हैं। हमें घृणा करनी नहीं आती, उपेक्षा करनी नहीं आती। हमसे भले कोई दिक हो जाय, हम किसी से दिक नहीं होतीं।" पुस्तकों की विभिन्न, पर मौन भाषा को उसने साफ-साफ समझा। उसके भग्न हृदय से शांति की अस्फुट किरण का उदय हुआ। आलमारी की चुनी हुई किताबों में उसने साक्षात् अभयदा सरस्वती के दर्शन किये। बहुत समय के बाद मानों माँ-सरस्वती के इशारे से ही उसने आलमारी में से एक पुस्तक निकाली। पुस्तक थी, सुप्रसिद्ध ग्रन्थकार स्माइल्स साहब की 'आत्मावलम्बन'। चटाई पर बैठकर पार्वती उसे पढ़ने लगी।

पुस्तक के अभी दो-ही चार पृष्ठ पढ़े होंगे कि रामप्रसाद की स्त्री वहाँ आ पहुँची। पार्वती को पुस्तक पढ़ते देखकर शरीर में आग लग गई। उसने अपने अभ्यस्त अनेक कुवाक्यों का विष उगलकर अन्त में कहा—"पुस्तकें पढ़कर ही तू राधे को चट कर गई; तू नार नहीं नागन है। भगवान्! भगवान्! मेरे घर में ऐसी डायन कहाँ से आ गई! वह था—तबाह कर गया; तू है—तबाह करने की फिक्र में है।"

हिरन के बच्चे पर शेरनी को गुर्राता देखकर जिस तरह उसका प्रणयी शेर भी गरजने लगता है, उसी तरह रामप्रसाद भी गरीब पार्वती पर टूट पड़ा। उसने भी स्वस्ति-वाचन के बाद कहा—"ठीक तो कहती है, यह नार नहीं नागन है। कहीं को मुँह काला भी तो नहीं करती। मैं ऐसी नागन को पालना नहीं चाहता। उसे खा गई। अब मुझे खायगी क्या?"

इधर रामप्रसाद बक रहा था, उधर पार्वती के हृदय में अनेक तरंगें उठ रही थीं। उन्हीं तरङ्गों में उसने अपने पति राधाचरण के दर्शन किये। इस समय उसकी आँख में कातरता के साथ-साथ दुःख भी था, विषाद भी था और अभागिनी पार्वती के लिये थी—गहरी सहानुभूति। स्माइल्स साहब की आत्मा भी अबला पार्वती को पुस्तक के रूप में खूब

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

बल प्रदान कर रही थी। पार्वती ने पुस्तक को बन्द कर दिया। पुस्तक के आवरण-पृष्ठ पर सोने के अक्षरों में छपे 'आत्मावलम्बन' के मनोहर शब्द पार्वती के अश्रुपूर्ण नेत्रों को अपनी ओर खींचने लगे।

— ३ —

दूसरे दिन प्रातःकाल पार्वती ने बड़ी शान्ति से अपनी सास को समझा दिया कि वह कुछ दिनों के लिये अपने भाई के पास जाना चाहती है। आप उसे एक चिट्ठी लिखवा दीजिए।

सास को मनचाही बात हाथ लग गई। उसने उसी समय स्त्री-जन सुलभ नमक-मिर्च लगाकर अपने पति रामप्रसाद से कह दिया। उन्होंने पहले तो 'हाँ' 'हूँ' की। फिर धर्म्म और स्वभाव की साथिनी स्त्री के कहने-सुनने पर सुखदयाल को एक चिट्ठी लिख दी।

चार दिन बाद बहू चली जायगी—इसलिए बहू के साथ अधिक कठोर व्यवहार न करना चाहिए। यह सोचकर रामप्रसाद-दम्पति का व्यवहार पार्वती के साथ अपेक्षाकृत अच्छा हो गया है। घर के कामों के साथ अब उसे गालियों का बोझा वहन नहीं करना पड़ता। पर कर्जदारी के कारण का जिक्र यथा-नियम प्रति दिन एक-दो बार हो जाता है।

राधाचरण को मरे अभी पूरा एक वर्ष भी नहीं हुआ था। इस थोड़े समय में ही घर की हर-एक चीज पार्वती के लिये बिलकुल बदल गई थी। घर के आदमियों के साथ घर के दरो-दीवार भी उसे काटने दौड़ते थे। मूल्य समाप्त न होने के कारण अभी तक उसके नाम कुछ समाचार पत्र आते थे। पार्वती समय मिलने पर उन्हें पढ़ लेती थी। आज के 'हितकारी' में उसने 'आवश्यकता' के स्तम्भ को बहुत गौर से पढ़ा।

तीसरे दिन जवाब आ गया कि शनैश्चर की रात को सुखदयाल बहन को लेने के लिए आवेगा। वृहस्पतिवार को पत्र मिला था। पार्वती को सिर्फ दो रोज का मिहमान समझ कर, सास और ससुर का कठोर हृदय और ढीला पड़ गया। पार्वती की सेवा और उसके कभी न डिगने-

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

वाले शोल में उन्हें अब बहुत कुछ भलाई दिखाई देने लगी। विच्छेद के विचार ने निस्संदेह उनको मानसिक कलुषता को बहुत कुछ दूर कर दिया।

काल भगवान् किसी की उपेक्षा नहीं करते। सूर्य के रथ का धुरा कभी नहीं टूटता। काल भगवान् के प्रधान सहचर सूर्यदेव सुखी-दुःखी—सभी को पीछे छोड़ते हुए रथ बढ़ाये हुये चले ही जाते हैं। शनैश्चर को रात को सुखदयाल—दैन्य और दारिद्रय की मूर्ति सुखदयाल—आ गया। बहन को गले लगाकर वह बहुत रोया। दूसरे दिन प्रातःकाल की ट्रेन से वह पार्वती को लेकर घर को रवाना हो गया।

पार्वती ने चलते समय सिर्फ अपने पति की पुस्तकों का एक ट्रंक अपने साथ लिया। बाकी न कोइ जेवर और न दो धोतियों को छोड़कर कोई कपड़ा। भरा हुआ घर, जो उसके लिए पहले ही खाली हो चुका था, उसने भी खाली कर दिया। चलते समय सास ने ऊपरी मन से जल्द आने के लिए कहा और स्त्री-जन-सुलभ अश्रुवर्षण का परिहास भी दिखाया।

पार्वती ने निष्कपट मन से जिस समय सास के चरण छुए, उस समय गरम-गरम आँसुओं की कुछ बूंदों ने भी हरदेवी के चरण छूने में उसके साथ प्रतियोगिता की!

—४—

पार्वती के आने से सुखदयाल की गरीबी का—पर पैतृक, और इसी लिये पक्का—घर स्वर्ग बन गया। उसके बालक, जो निर्धनता के कारण शिक्षा न पा सकते थे, बुआ पार्वती से पढ़ने लगे। सुखदयाल की बड़ी लड़की शान्ति उससे हिन्दी-शिक्षा के साथ-साथ सिलाई का काम भी सीखने लगी। थोड़े ही दिनों में पार्वती और शान्ति को सुई के प्रताप से कुछ कम दो रुपये रोज की आमदनी होने लगी। पार्वती के कहने पर सुखदयाल एक अच्छी गाय खरीद लाया। अब उसके घर में

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सब कुछ था। विद्या थी, धन था और गोरस था। सुखदयाल की स्त्री चमेली पार्वती को अपनी समृद्धि का मूल कारण समझती थी। वह उसे साक्षात् देवी समझती थी। प्रातःकाल उठकर उसके चरण छूती थी। घर का हर काम उसकी आज्ञा लेकर करती थी।

एक वर्ष बीत गया। पार्वती हिन्दू गर्ल्स-स्कूल में हिन्दी पढ़ाती है। इसी वर्ष उसने प्रवेशिका परीक्षा पास कर ली है। ५०) मासिक वेतन मिलता है। अब सुखदयाल के बालक जो एक वर्ष पहले लावारिस और अवारा घूमते-फिरते थे, साफ कपड़े पहनकर भले बालकों की तरह बगल में पुस्तकें दबाये स्कूल जाते हैं। लड़की शान्ति भी पार्वती के साथ स्कूल में काम करती है। देवि-स्वरूपिणी बहन पार्वती की बदौलत भाई सुखदयाल ने भी चपरासगिरी के कर्कश हाथों से छुटकारा पाकर सौदागिरी की दूकान खोल ली है।

सुखदयाल का घर भी अच्छा खासा बालिका-विद्यालय था। महल्ले-भर की छोटी-बड़ी अनेक लड़कियाँ स्कूल से इतर समय में पढ़ने और सुई का काम सीखने आती थीं। विद्या दान का द्वार सदा उन्मुक्त रहता था। पार्वती के परोपकार आदि सद्गुणों की प्रशंसा महल्ले से बढ़कर शहर भर में फैल गई थी।

× × ×

चार वर्ष और बीत गये। पार्वती ने प्राइवेट तौर पर पहली कक्षा में बी० ए० पास किया। रायपुर के कलेक्टर की पत्नी ने अपने हाथ से पार्वती को सफेद साड़ी पर प्रतिष्ठा-सूचक मेडल पहनाया। हिन्दू-गर्ल्स स्कूल की प्रधान शिक्षयित्री (लेडी-प्रिन्सिपल) के पद पर, जिसकी शोभा उपयुक्त हिन्दू-पण्डिता के न मिलने के कारण अब तक क्रिश्चियन लेडियाँ बढ़ाती रहीं, पण्डिता पार्वती को आसीन किया गया। शहर भर में पार्वती का यशोगान होने लगा। वेतन भी एकदम २५०) हो गया।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

—५—

रविवार का दिन था। स्कूल के बड़े कमरे में प्रबन्ध-कारिणी समिति के सदस्यों की अन्तरङ्ग सभा हो रही थी। मेम्बर सभी स्त्रियाँ थीं। राय रामकिशोर बहादुर की पत्नी, जो स्कूल की आनरेरी सेक्रेटरी थीं, प्रबन्ध-सम्बन्धी अनेक विषय पेश कर रही थीं। रायबहादुर की पत्नी ने कहा—"अब मैं आज की बैठक का आखिरि विषय अर्थात् स्कूल के चपरासी के काम के लिए आई हुई दरखास्तें पेश करती हूँ। मेरी सम्मति में जिन लोगों की दरखास्तें हैं, उन्हें बिना देखे नौकर रखना ठीक न होगा। चपरासी बूढ़ा तो होगा ही, पर साथ-ही-साथ चिड़चिड़ा या जियादह कमजोर भी न होना चाहिये, और यह ऐसी बात है, जो बिना देखे ठीक नहीं हो सकतीं। अब मैं इस विषय में आपकी या बाईजी की (मतलब था प्रिन्सिपल पार्वती से) जैसी आज्ञा हो वैसे करूँ ?"

उपस्थित अन्य तीन महिलाओं ने एक स्वर से कहा—"इस विषय में बाईजी की आज्ञानुसार ही काम होना चाहिये; क्योंकि बाईजी की आज्ञायें पालन करने और दरबानी के लिये ही चपरासी की नियुक्ति होगी।"

पार्वती ने अपने शान्त, पर प्रभा-पूर्ण, मुख-कमल को खिलाते हुए कहा—"मैं रायबहादुर की पत्नी से सहमत हूँ। आदमी को देखकर ही रखना अच्छा होगा। मनुष्य के चेहरे से उसके गुण-दोषों का बहुत पता लग जाता है। उस दिन 'रैशनल थॉट' में मिस्टर अरनडल का, आपने, सेक्रेटरी महोदया, इसी विषय पर एक लेख पढ़ा था ?"

रायबहादुर की पत्नी ने कहा—"पढ़ा तो था, पर समझा था कम। आजकल आपका पूरा समय और शक्ति 'विधवा-आश्रम' की स्थापना में लग रहे हैं।' इस तरह आप देश की बड़ी भारी सेवा कर रही हैं ! आपका कुछ भी समय खाली होता, तो मैं आप से अंग्रेजी-साहित्य का थोड़ा-बहुत अध्ययन करके अपनी इस कमी को जरूर पूरा करती। पर

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

मेरे मूर्ख रह जाने से देश की विधवाओं की दुःख भरी शोचनीय अवस्था को सुधार देने वाले 'विधवा-आश्रम' की स्थापना कहीं बढ़कर आवश्यक और एकान्त कर्तव्य है।"

पार्वती ने मुस्कराते हुए कहा—"धन्यवाद, आपकी सहायता और ईश्वर की कृपा से ही यह काम पूरा हो सकेगा। आप सुनकर प्रसन्न होंगी कि हमारे प्रजा-प्रिय छोटे लाट महोदय ने हिमालय-पार्श्व के उस बड़े भू खण्ड को विधवा-आश्रम के लिये देने की कृपा की है। चन्दा भी कुछ कम एक लाख हो गया है। ईश्वर की कृपा हुई तो अब यह कार्य शीघ्र ही पूर्ण हो जायगा।"

रायबहादुर की पत्नी ने बड़े हर्ष के साथ कहा—"अब काम के पूरा होने में कुछ सन्देह नहीं। जिस दिन आपने आश्रम के लिये अपना जीवन देने का महा-प्रण किया था, हमें क्या, देश के सभी हितैषियों को उसी दिन काम के पूरा होने का पक्का भरोसा हो गया था।"

पार्वती ने बड़ी सरलता से कहा—"बहन, धन्यवाद! हाँ, तुम्हारी अङ्गरेजी-साहित्य पढ़ने की बात रही जाती है। उसके विषय में मेरा निवेदन है कि आप रायबहादुर साहब से पढ़ें। स्त्रियों के लिये पति से बढ़-कर शिक्षक और कोई नहीं। लड़कियों को माता-पिता या अन्य कोई शिक्षक पढ़ा सकता है; पर स्त्रियों का, या साहित्य की भाषा में प्रौढ़ाओं का, परम गुरु और शिक्षक पति ही है। आशा है, आप मुझे इस वक्तव्य के लिये क्षमा करेंगी।"

रायबहादुर की पत्नी सौजन्य दिखाते हुए लेडी-प्रिन्सिपल को धन्यवाद दिया और साथ ही सभा का कार्य्य भी समाप्त कर दिया।

—६—

कङ्गाल भारत की विभूति का कल्पित स्वप्न देखकर आज भी अनेक विदेशी चौंक उठते हैं। किन्तु जिन लोगों ने भारत के गाँव देखे हैं, एक-वस्त्रधारी कृश-काय अस्थि-चर्मविशिष्ट भारत-गौरव किसानों को देखा है, वे भारत की विभूति को खूब समझते हैं।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

गर्ल्स-स्कूल में आठ रुपये की चपरास के लिये इतने आदमी आवेंगे किसी को खयाल भी न था। अनेक बूढ़े आदमी पाँत बाँधे बैठे थे। राय बहादुर की पत्नी और सेकेण्ड मिस्ट्रेस सुशीला देवी ने उस भीड़ में से चार आदमियों को चुन लिया। इन्हीं में से एक को बड़ी बाईजी चुनेंगी। हिन्दू-गर्ल्स-स्कूल में परदे और सदाचार का विशेष ध्यान रखा जाता है। इसीलिये किसी नौकर की नियुक्ति के विषय में बहुत सावधानी से काम लेना पड़ता है। स्कूल-भर में चपरासी का काम ही बूढ़े मर्द के सुपुर्द था; बाकी सब कामों पर स्त्रियाँ ही नियुक्त थीं।

दस बजते-बजते लेडी-प्रिन्सिपल की गाड़ी स्कूल के बरामदे में पहुँच गई। विभिन्न कक्षाओं की विभिन्न पंक्तियों में खड़ी बालिकाओं ने बड़ी श्रद्धा से प्रधानाध्यापिका को प्रणाम किया। गाड़ी से उतर कर वे सीधी आॅफिस में पहुँचीं। रायबहादुर की पत्नी वहाँ पहले ही से उपस्थित थीं। प्रिन्सिपल के पहुँचने पर दासी ने बारी-बारी से उन चारों आदमियों को बुलाया।

पहले आदमी को देखते ही पार्वती के विस्मय का ठिकाना न रहा। वह बूढ़ा आदमी और कोई न था—अभागा रामप्रसाद था। उसे देख कर पण्डिता पार्वती के भावुक हृदय में क्षणभर के लिए लज्जा का उदय हुआ। किन्तु उसने तत्काल ही अपने को सँभाल लिया।

सौ मील की दूरी पर आठ रुपये की नौकरी के लिए वह क्यों आया है? मालूम होता है, उसकी मिलकियत और मकान चाटुकार पड़ोसी सूदखोर की विशाल तोंद में जरूर समा गया। रामप्रसाद के मलिन और चिन्तित मुख को देखकर करुण-हृदय पार्वती के मन का अन्तस्थल तक हिल गया। उसने दूसरी तरफ को मुँह करके अनमने भाव से सन्देह-निवारण के लिए पूछा—"आप का नाम?"

"रामप्रसाद पाण्डे।"

"मकान?"

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

"बिलासपुर।"

"इतनी दूर नौकरी के लिए क्यों आए ?"

"माँ, पेट की खातिर !"

"घर पर खेती-बारी न थी ?"

"माँ, सब कुछ था; खेती क्या, जमीदारी भी थी।"

"वह क्या हुई ?"

"कर्ज में बिक गई।"

'कर्ज क्यों लिया था ?"

"माँ, दुख की बातें हैं; उन्हें भूल जाना अच्छा है।"

"फिर भी सुनाइये तो ?"

"भतीजे की पढ़ाई के लिए।"

"और क्या ?"

"और कुछ नहीं—"

"लड़की की शादी में फजूलखर्च नहीं की थी ?"

बूढ़े का चेहरा उतर गया। उसने पार्वती का चेहरा कभी न देखा था, और अब तो विद्या, मान और अधिकार की दीप्ति ने उसे बिल्कुल बदल दिया था। बूढ़ा मन-ही-मन बाईजी को देवी समझने लगा। रायबहादुर की पत्नी भी इस प्रश्नोत्तरी को एकाग्र मन से सुन रही थीं।

"माँ, तुम देवी हो। सचमुच लड़की की शादी में ही बरबाद हुआ हूँ।"

"तो भतीजे की पढ़ाई में कुछ-न-कुछ रुपया कर्ज लेना पड़ा होगा ?"

"माँ सिर्फ डेढ़ सौ रुपये !" —कहते-कहते बूढ़े के कोटर सदृश नेत्रों में आंसू भर आये।

"अच्छा, आप बाहर बैठिये।"

बाकी तीन आदमियों में से एक आदमी चुन लिया गया। बूढ़ा रामप्रसाद उसी समय लेडी-प्रिन्सिपल के बँगले पर पहुँचाया गया।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

आठ रुपये की नौकरी के लिये आए हुये रामप्रसाद को बँगले के नौकरों द्वारा जब मालिक की तरह ठहराया गया, तब उसे बहुत आश्चर्य हुआ।

शाम को भोजनोपरान्त पर्वती ने कहा—'आप मुझे पहचानते हैं ?"

"हाँ, आप स्कूल की बड़ी बाई हैं ?"

"मैं आप के भतीजे की अभागिनी स्त्री हूँ ?"

बूढ़े की निद्रा टूट गई। उसे मूर्छा आने लगी, पार्वती की भतीजी शान्ति ने सँभाल लिया।

पार्वती ने बहुत चाहा कि रामप्रसाद यहीं रहें। पर वह राजी न हुआ। आत्म ग्लानि की तीव्र अग्नि से वह अन्दर ही अन्दर जल रहा था। चलते समय पार्वती ने कभी-कभी दर्शन देने का वचन ले लिया। फिर एक-एक हजार के दो नोटों को लिफाफे में बन्द करके ससुर के हाथ में दिया और बड़ी नम्रता से कहा—"यह चिट्ठी मां जी को दे दीजियेगा और अबकी बार उन्हें जरूर साथ लाइयेगा।"

———

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

डाकू

[श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार]

दोपहर ढलने का समय था मगर सूरज अभी तक आग बरसा रहा था।

दरबार साहब (अमृतसर) के दक्षिण में मुसाफिरों के लिए एक बहुत बड़ी धर्मशाला बनी हुई है। धर्मशाला में एक बहुत बड़ा तहखाना है। अंधेरा और सील से भरा हुआ। मेले ठेले की बड़ी भीड़ को जगह देने के लिये ही इस तहखाने का प्रयोग किया जाता है; अन्यथा पृथ्वी के भीतर बना हुआ यह नीची छत का और बोसियों खम्भों पर टिका हुआ अंधेरा हाल मध्य-युग के कैदखानों से कम भयंकर नहीं जान पड़ता; परन्तु गर्मियों की दोपहर को धर्मशाला में टिकनेवाले अमीर से अमीर मुसाफिर भी इस तहखाने का आश्रय लेते हैं।

इसी तहखाने में आज सुबह से दोआबे का मशहूर डाकू सिकन्दर-सिंह डेरा डाले पड़ा है। इस सराय में शराब पीने की सख्त मनाही है, परन्तु सिकन्दर सिंह सुबह-सुबह ही शराब की तीन बोतलें खाली कर चुका है। उसका डोलडौल इतना बड़ा और उसकी प्रकृति इतनी भयानक है कि उससे कुछ भी कहने का जैसे किसी को साहस ही नहीं हुआ। तहखाने में अँधेरा रहता है, इससे मक्खियाँ वहाँ आने की हिम्मत नहीं करतीं, परन्तु उनकी कमी मच्छर पूरी कर देते हैं। आज जैसे तहखाने भर के सभी मच्छर सिकन्दरसिंह के ही आस-पास आ जमा हुए थे। शराब की तीन बोतलें एक साथ चढ़ाकर सिकन्दरसिंह सो गया था। यही गनीमत है कि शराब पीकर उसने बकझक नहीं शुरू कर दी। दोपहर भर वह इसी तहखाने के एक कोने में पड़ा-पड़ा खुर्राटे भरता रहा। उसकी दाढ़ी, मूँछ और केशों के तीन-तीन घने

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

जंगलों में इस समय तक सैकड़ों मच्छर जा फँसे थे और मानो रास्ता भटक जाने के कारण वे सब सायँ-सायँ करके चिल्ला रहे थे। मच्छरों की यह सायँ-सायँ दूर-दूर तक के लोगों को परेशान कर रही थी; मगर सिकन्दरसिंह मस्त होकर पड़ा था। खुद और दुनिया दोनों से बेखबर।

सिकन्दरसिंह के नाम से सारा दोआबा थर-थर काँपता है। उसकी डकैत-पार्टी ने एक बार पुनः पंजाब को वारेन हेस्टिंग्स के जमाने की याद दिला दी है। पिछले दो-तीन बरसों से उसका दल बाकायदा नोटिस देकर डाके डालता रहा है और पुलिस कुछ भी नहीं कर सकी। माँ-बाप ने सिकन्दरसिंह का नाम धरमसिंह रखा था; मगर वह धर्म का शेर न बनकर सिकन्दर जा बना।

किस्मत के फेर से वही सिकन्दर आज फरार के रूप में अमृतसर पहुँचा है। उसके प्रमुख साथी पकड़ लिये गये हैं; परन्तु वह पुलिस को चकमा देकर निकल आया है।

दोपहर जरा ढलने को हुई, तो सिकन्दर की नींद टूट गई। नशे की खुमारी इतनी शीघ्र उतर गई थी। कुछ तो चिन्ता ने और कुछ मच्छरों ने जैसे उसका सारा नशा पी डाला था। लेटे ही लेटे जो अँगड़ाई ली, तो उसके बालों मे फंसे मच्छरों में खलबली मच गई। उनकी भिनभिनाहट से बहुत ही परेशान होकर सिकन्दर ने अपनी लाल आंखें खोलीं और तब बिजली की तेजी से उसने अपनी दाढ़ी-मूछों को मसल डाला। इस जाल में जितने मच्छर फंसे हुए थे, वे सब क्षण-भर मे कुचले जाकर सिकन्दरसिंह के चेहरे को और भी घिनौना बनाने लगे।

सिकन्दर ने दूसरीं अँगड़ाई ली और इसके बाद वह उठ कर बैठ गया। दोपहर ढल रही थी और पश्चिम के झरोखों से जरासा प्रकाश इस तहखाने में आ रहा था। सिकन्दर ने अपने को बहुत ही दलित दशा में अनुभव किया। उसकी बीती हुई रात बहुत ही घटना-पूर्ण रही थी। उसके सम्पूर्ण जीवन में इस रात के समान अभाग्य-पूर्ण और

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

भयंकर समय और कभी नहीं बीता। अपने जीवन-भर में उसने जो इमारत बनाई थी, वह सहसा इसी एक रात में गिर पड़ी। आज गर्मियों की इस ढलती हुई दोपहर के समय इस अँधेरे तहखाने में अकेले और भूखे पेट बैठे हुए सिकन्दर को अपने जीवन में पहली बार यह अनुभव हुआ कि वह एक बड़ा अभागा है। डाके डालकर, लोगों का गला घोंटकर, उसने जो धन जमा किया था, वह इस तरह बिलकुल अचानक उसके हाथों से छिन गया और आज वह अपना सिर छिपाने के लिये इस तरह मारा-मारा फिर रहा है; यह भी कोई जिन्दगी है !

तहखाने की दूसरी ओर पाँच-छः प्रेमी सिक्ख बैठे सरदाई घोट रहे थे। सहसा उनमें से एक यात्री गुरुग्रन्थ साहब का कोई शब्द गा उठा और तब एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ तक पहुँचता हुआ भक्ति का वह संगीत सम्पूर्ण तहखाने में मानो सजीव होकर गूँज उठा। भक्ति के संगीत का असर इतना द्रावक और इतना संक्रामक होता है, यह अनुभव सिकन्दर को आज पहली बार हुआ। आखिर वह भी एक सिक्ख ही था न। थोड़ी देर तक तन्मय-सा होकर इसी गीत को सुनता रहा; जैसे—उसके व्याकुल हृदय पर ठण्डा मरहम लगाया जा रहा हो।

परन्तु, सिकन्दरसिंह के पके हुए हृदय पर से इस मरहम का प्रभाव बहुत शीघ्र नष्ट हो गया। पिछली रात की घटनाएं रह-रह कर उसके उदास और व्याकुल हृदय को सन्तप्त करने लगीं। पिछले अठारह घण्टे के भीतर-ही-भीतर जो अकल्पनीय घटनाएँ घटित हो गई हैं, वे सब एक-एक करके उसके मानसिक नेत्रों के सम्मुख घूम गईं।

अजनाले के निकट एक छोटा-सा गाँव है। इस गाँव में अधिकांश सिक्ख काश्तकार ही आबाद हैं। कल शाम को इसी गाँव के बनिये ने सिकन्दर और उसके साथियों को अपने यहाँ निमन्त्रित किया था। यह बनिया सिकन्दर का अन्तरंग मित्र था। सिकन्दर की डकैत-पार्टी लूट-मारकर जो कुछ संग्रह कर लाती वह सब इसी बनिये के यहाँ

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

स्टोर किया जाता था। हर दूसरे-तीसरे महीने इसी बनिये के यहाँ सिकन्दर का सम्पूर्ण दल जमा होता और तब भविष्य का कार्य-क्रम बनाया जाता था।

सदा के समान कल रात भी सिकन्दर तथा उसके प्रमुख सहकारी उसी बनिये के मकान पर एकत्र हुये थे। बनिया कल कुछ घबराया हुआ-सा प्रतीत होता था। सिकन्दर ने उससे इस घबराहट का कारण भी पूछा; परन्तु वह टाल गया। तन्दूर के पराठे, सब्जियाँ, बकरे का मांस, आम, खुमानियाँ आदि चीजें पेट भर खा लेने के बाद देशी शराब का दौर चलने लगा। बनिया खुद बहुत सँभलकर पी रहा था; परन्तु सिकन्दर और उसके साथियों को वह खूब पीने के लिए प्रेरित कर रहा था। सिकन्दर को किसी बात का शक तो था नहीं, वह पीता चला गया। रात का समय था। गाँव की बात है, जहाँ रात होते ही सभी ओर गहरा अन्धकार छा जाता है। बनिये का मकान गाँव के एक किनारे पर था। उसके बहुत नजदीक से सैकड़ों गीदड़ों की चिल्लाहट सुनाई दे रही थी; परन्तु मकान के भीतर पूरा सन्नाटा था। शराब के नशे में भी वे डाकू शोरगुल प्रायः नहीं मचाते थे।

वह बनिया सहसा मस्ती का नाट्य करने लगा। बाकी सब लोगों पर भी शराब का नशा गहरा असर कर रहा था। बनिया अपनी भद्दी-सी आवाज में कोई अश्लील गीत गुनगुनाने लगा और यह गुनगुनाहट क्रमशः ऊँची होती चली गई।

बनिये का यह संगीत जैसे कोई बँधा हुआ चिह्न था। गीत की आवाज ऊँची होते ही सहन के दरवाजे पर जोर की एक चोट पड़ी और दरवाजा उसी क्षण टूट कर गिर पड़ा। मिनट भर की भी देर नहीं हुई, और सिकन्दर तथा उसके साथियों ने अपने को हथियारबन्द पुलिस से घिरा हुआ पाया। सिकन्दर को सारा मामला समझने में देर न लगी। उसकी कमर में एक छोटी-सी कृपाण बँधी थी। उसने चाहा

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

कि वह उसी कृपाण से बनिये के टुकड़े-टुकड़े कर डाले; परन्तु पुलिस ने अपने काम में देर नहीं की। टार्च की तेज रोशनी में सभी डाकुओं के हाथ-पैर कस दिये गये।

रात-ही-रात में यह खबर आस-पास के सभी गाँवों में फैल गई। गाँववालों के लिये यह संसार का सबसे बड़ा समाचार था। एक मोटर लारी में बन्द करके सब डाकुओं को उसी समय अजनाला पुलिस स्टेशन पर पहुँचा दिया गया।

रात के तीसरे पहर, जब सिकन्दर के सभी साथी सींकचों में बन्द होकर ऊँघ रहे थे, उसके एक दोस्त और फरमाबरदार साथी डाकू ने जिस तरह अपनी जान देकर उसे हवालात से छुड़वाया और जिस तरह रात-ही-रात में अजनाले से भागकर वह अमृतसर तक आ पहुँचा, वह सब सिकन्दर को जैसे किसी बहुत पुरानी, पिछले जन्म की-सी याद के समान जान पड़ा।

और अब जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना के कुछ ही घण्टों के बाद, भक्ति का यह संगीत, तीर्थ यात्रियों का यह उल्लास और गुरुओं की पवित्र भूमि यह अमृतसर। सिकन्दर चौंककर उठ खड़ा हुआ। वह आज अमृतसर में है। अपने डकैत जीवन में वह आज पहली बार अमृतसर आया है। और कहीं न जाकर वह अमृतसर क्यों चला आया?

और तब सिकन्दर सहसा विचलित हो उठा और अत्यधिक उद्विग्न भाव से उसी अन्धकारमग्न तहखाने के भीतर सीमित से स्थान पर टहलने लगा।

साँझ हो गई थी। तहखाने के अधिकांश लोग बाहर चले गये थे। सिकन्दर को भी भूख-प्यास की जलन अनुभव होने लगी। आज सुबह-सुबह अमृतसर पहुँचते ही बाजार की किसी दूकान से वह शराब की तीन बोतलें चुरा लाया था। उन तीन बोतलों के अतिरिक्त कल रात से अभी तक कुछ भी उसके पेट में नहीं पहुँचा था।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सिकन्दरसिंह ने अपने कपड़े झाड़े, और तब तहखाने से बाहर निकल आया। सराय के ठीक बीचों-बीच बनी टंकी का नल खोल-कर उसने हाथ-मुँह धोया, बाल साफ किये और कंघी की सहायता से यथासम्भव शरीफाना और रोबीली सूरत बनाकर वह सराय से बाहर चल दिया।

सूरज अब तक मकानों की ओट में हो गया था, इससे अमृत-सर की तङ्ग सड़कें पूर्णरूप से छायामय हो गई थीं, और उन पर आवागमन बहुत बढ़ गया था। सिकन्दर धीमी चाल से चुप-चाप इसी भीड़ में बढ़ता चला गया। अमृतसर के तङ्ग; परन्तु सम्पन्न बाजारों में उसे कोई विशेष दिलचस्पी नहीं थी। इस समय तो उसे केवल दो ही बातों की चिन्ता थी—एक पेट भरने की और दूसरे पुलिस से बचने की।

जलियाँवाला बाग के निकट पहुँचकर उसकी निगाह उर्दू अखबारों के साँझ-संस्करण के पोस्टरों पर पड़ी। यह देखकर उसे विशेष सन्तोष हुआ कि उसी की कल की बहादुरी के कारनामे उन पोस्टरों में बड़े-बड़े अक्षरों में दिये गये हैं। बाजार में बीसियों जगह उसने अपनी चरचा सुनी।

घूमते-फिरते सिकन्दर गुरु बाजार में जा पहुँचा। इस तङ्ग-से बाजार में भीड़-भाड़ और भी अधिक थी। एक जगह उसने देखा कि एक दूकान के सामने एक शानदार बन्द मोटर गाड़ी खड़ी है और उसकी अगली सीट पर बैठे दो सज्जन उसी के सम्बन्ध में बातें कर रहे हैं। इस कार की पिछली सीट पर तीन महिलाएँ बैठी हुई थीं। एक वृद्धा और दो युवतियाँ। उनके बीचों-बीच चमड़े का एक जनाना बटुआ पड़ा हुआ था। सिकन्दर ने उस बटुए तथा उस वृद्ध महिला के कीमती आभूषणों को लालच की निगाह से देखा। वे दोनों भद्र पुरुष उसके सम्बन्ध में क्या बातें कर रहे हैं, यह जानने

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

की भी उसे उत्कण्ठा हुई। बाजार में बेहद भीड़ थी और इस जगह कार खड़ी होने के कारण बाजार का आवागमन और भी दिक्कत के साथ हो रहा था। सिकन्दरसिंह इसी भीड़ में इधर-से-उधर धक्के खाने और धक्के मारने लगा। सिकन्दर को बहुत शीघ्र मालूम हो गया कि उन दोनों में से एक बहुत ऊँचा सरकारी अफसर है। और उसी की जबानी उसने यह भी सुना कि उसे पकड़ने वाले के लिये सरकार ने ५ हजार रुपयों के इनाम की घोषणा कर दी है।

एक ही दो मिनट के भीतर गुरु बाजार में एक भारी डकैती हो जाने का शोर मच गया। कार में अपने पति और अपनी सन्तान के साथ बैठी हुई एक सम्भ्रान्त रमणी के गले का कीमती हार और बटुआ दिन दहाड़े चोरी हो गया। लोगों ने चोर को देखा भी मगर वह पकड़ा नहीं गया। दो-तीन हजार रुपयों की चोरी का यह समाचार फरलांग भर दूर पहुँच कर ही दो-तीन लाख रुपयों की चोरी का समाचार बन गया। और तब सम्पूर्ण गुरु बाजार में जैसे एक भूकम्प-सा आ गया।

और उधर चोरी के माल को अपने कच्छे में छिपाये हुए सिकन्दर सिंह अब घंटाघर के नजदीक जा पहुँचा था। घंटाघर के आस-पास जो थोड़ी-सी खुली जगह है, वहाँ खड़े होकर दो-एक क्षण तक परिस्थिति पर विचार करते हुए सिकन्दर ने सोचा कि सबसे अच्छा यही रहेगा कि वह पुनः उसी तहखाने में पहुँचे, ताकि बटुए में से रुपया निकालकर वह खाने-पीने का इन्तजाम कर सके। इस समय क्षुधा-निवारण ही उसकी सबसे बड़ी समस्या थी।

परन्तु, सहसा उसकी निगाह अपनी दाहिनी ओर घूम गई। घंटाघर के निकट ही स्वच्छ जल का एक बहुत बड़ा तालाब है। श्वेत संगमरमर से छाया हुआ सा। इस तालाब के बीचो-बीच

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

एक बहुत बड़ा मन्दिर है। सोने से ढका हुआ-सा। इस अँधियारी साँझ को बिजली के उज्ज्वल प्रकाश में जैसे वह सम्पूर्ण तालाब झकझक कर रहा था।

सिकन्दरसिंह को यह दृश्य सचमुच स्वर्गीय जान पड़ा। जिस दरबार साहब की महिमा वह बचपन से सुनता चला आता है, जिसकी भव्यता उसके अन्तःकरण में माँ की मधुर याद के समान अङ्कित है, जो प्रत्येक सिक्ख के लिये सबसे बड़ा तीर्थ है, वही पवित्र दरबार इस समय उसकी आँखों के सामने है। वह आज अचानक दरबार साहब की ड्योढ़ी के निकट आ खड़ा हुआ है—इस अनुभूति ने उसके हृदय में एक विशेष प्रकार की उमङ्ग-सी पैदा कर दी, और इसके बाद जूते उतार कर वह भी दरबार साहब की दर्शनीय भीड़ में शामिल हो गया!

यन्त्र-चालित के समान आगे बढ़ते-बढ़ते उसने अपने को दरबार साहब में ठीक गुरुग्रन्थ साहब के सामने पाया। संगत लगी हुई थी। अन्य तीर्थ-यात्रियों के साथ-साथ भीतर पहुँचकर सिकन्दर ने अत्यन्त श्रद्धा-भाव से मस्तक झुकाकर अदृश्य परम अकाल पुरुष को प्रणाम किया। एक सेवादार ने थाल में से थोड़ा-सा हलुआ निकालकर सिकन्दर को प्रसाद दिया, जिसे माथे लगाकर वह अत्यन्त भक्ति-भाव से उदरस्थ कर गया। इसके बाद निकट ही एक ओर वह भक्तों की श्रेणी में जा बैठा।

मन्दिर के भीतर सुगन्ध की लपटें-सी उठ रहीं थीं। ग्रन्थी महोदय बहुत ही श्रद्धा-भाव से गुरुग्रन्थ पर चँवर डुला रहे थे। एक ओर रागियों की टोली बैठी थी और सितार, तबला और हारमोनियम के साथ वह आलाप ले रही थी—

हम निरगुन तुम तत्तग्यानी!

भक्त लोग चुपचाप सुन रहे थे। पन्द्रह-बीस मिनट बीत गये और यह आलाप समाप्त नहीं हुआ—

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

हम निरगुन तुम तत्ताग्यानी !

मालूम नहीं, यह आलाप कब से शुरू हुआ था और कब तक जारी रहेगा। गानेवाले गाये जा रहे हैं और सुनने वाले सुने जा रहे हैं—

हम निरगुन तुम तत्ताग्यानी !

इन सरल मे शब्दों में कुछ ऐसी गहराई थी, इस स्वर में कुछ ऐसा माधुर्य था, चारों ओर के वातावरण में कुछ ऐसा जादू था कि जन्म-भर के डकैत और हत्यारे सिकन्दरसिंह के अन्तःकरण में भी क्षण-भर के लिए मानो आत्म-प्रकाश का उजियाला-सा छा गया। हाँ, सच ही तो है। उसका जीवन, आप का जीवन है। उसमें तत्त्व जरा भी नहीं, गुण एक भी नहीं। और हे परम अकाल पुरुष! तुम तत्त्व हो तत्त्व हो। तुम मेरे अन्तरतम को पहचानते हो। मैं अधम हूँ, नीच हूँ, महापापी हूँ; परन्तु मैं तुम्हारा दास हूँ। केवल तुम्हारे ही नाते अब भी मेरे लिए आशा हो सकती है।

सिकन्दरसिंह के शरीर भर में रोमांच हो आया। भक्ति के आवेश में क्षण-भर के लिए जैसे वह सभी कुछ भूल गया। वह भूल गया कि वह एक डाकू है और उसे पकड़नेवाले के लिए पाँच हजार रुपयों के इनाम की घोषणा हो चुकी है। वह भूल गया कि वह सुबह का भूखा है और इस वक्त उसे जोर की भूख मालूम हो रही है। वह तो इतना भी भूल गया कि वह एक मुसाफिर है और क्षण-भर के लिये यहाँ आ बैठा है। उसे तो ऐसा जान पड़ा, जैसे वह मुद्दत से इसी मन्दिर का है, जैसे संसार के साथ उसका कहीं कोई नाता नहीं। नाता है तो सिर्फ इसी मन्दिर से, इसी दरबार से और इसी दरबार के साहब से।

रागी अब भी गाये जा रहे थे। वही चीज—

हम निरगुन तुम तत्ताग्यानी !

अपने जीवन में शायद पहली बार सिकन्दर की आँखों में पानी भर आया।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

इसी समय किसी भद्रकुल की एक बहुत ही सुन्दर नारी ने मन्दिर में प्रवेश किया। इस महिला की गोद में दो-तीन महीने का फूल सा कोमल एक बालक था। वह महिला बड़ी भक्ति के साथ आगे बढ़ी और अपने गोद के बालक के मस्तक को उसने ग्रन्थ साहब के नीचे के फर्श से छुआ दिया। इसके बाद वह स्वयं अपना मस्तक झुकाकर ग्रन्थ साहब के सम्मुख साष्टांग प्रणाम करने लगी। प्रतीत होता है, जैसे वह अपनी प्रथम सन्तान की कोई मनौती मनाने यहाँ आई थी।

दो-तीन मिनट के बाद वह महिला उठी। अपनी कलाइयों में सोने की वह जितनी चूड़ियाँ पहने हुए थी, वे सब उसने उतार दीं और अत्यन्त श्रद्धा-भाव के साथ उन्हें ग्रन्थ साहब के सामने बिछी चादर पर रख दिया।

मन्दिर में उपस्थित सभी लोगों ने उस नारी के इस त्याग को बड़ी श्रद्धा के साथ देखा; परन्तु सिकन्दरसिंह पर तो इस घटना ने जैसे जादू कर दिया। उसका अंग-अंग काँपने लगा और बहुत ही विचलित होकर वह उठ खड़ा हुआ। काँपते हुए हाथों से उसने हाल ही में चुराया हुआ सोने का कण्ठहार तथा बटुआ बाहर निकाला और परम अकाल पुरुष के सम्मुख नतमस्तक होकर उसने वे दोनों चीजें उसी चादर पर रख दीं और इसके साथ-ही-साथ फौलाद सा मजबूत सिकन्दर-सिंह बच्चों की तरह फुफकार कर रो उठा!

दस बजते-न-बजते सम्पूर्ण अमृतसर में इसी बात की चरचा थी कि दोआबे का प्रसिद्ध डाकू सिकन्दरसिंह दरबार साहब में गिरफ्तार हो गया है।

———

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

टटोलूरामजी टलास्त्री

[श्री बदरीनाथ भट्ट]

—१—

हिन्दी पुस्तकों के नामी प्रकाशकों में टटोलूरामजी टलास्त्री एक जीव विशेष हैं। हिन्दी संसार में, जिल्द बाँधने से लगाकर मौलिक-ग्रन्थ-लेखन तक, जिन जिन लोगों को कुछ भी काम करना पड़ता है उन सभी की जिह्वा-सड़क पर होकर टटोलूरामजी टलास्त्री का नाम-ठेला—आठ घंटे सोने के निकाल दीजिए—सोलह घंटे में दो-चार बार अवश्य ही निकल जाया करता है। ऐसे हैं टटोलूरामजी टलास्त्री।

आप का असली नाम क्या है, यह अब किसी को याद नहीं है; याद हो भी तो कोई लेता नहीं है। आप की प्रवृत्ति देखकर बहुत दिनों से लोग आप को टटोलूराम ही कहते आये हैं। कुछ मित्रों ने आप के पीछे 'टलास्त्री' की दुम लगा दी है, अतएव वे आप को 'टलास्त्री' ही कहते हैं। पाठकों के कुतूहल को दूर करने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि उन्हें यह बतला दिया जाय कि आप के ऐसे ऐसे विचित्र नाम क्यों रखे गये। बात कुछ नहीं है; अड़ोसी-पड़ोसियों और मिलने-जुलनेवालों ने देखा कि आप यश और धन की टटोल में बेतरह रहते हैं; बस, इसी से आप का नाम टटोलूराम पड़ गया। अपने पुस्तक प्रकाशन के व्यवसाय को बदौलत आपको दोनों ही वस्तुएँ प्राप्त करने में कितनी सरलता हुई, जानकारों से यह छिपा नहीं है। रही 'टलास्त्री' की, सो यह उपाधि आपको आपके मित्रों ने, सर्व-सम्मति से, तब देना उचित—नहीं आवश्यक—समझा जब उन्होंने

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

देखा कि और तो और टाल बताने में आप अपनी स्त्री से भी नहीं चूकते। उदाहरणार्थ, यदि कभी स्त्री ने कहा कि "माँग में लगाने को सिंदूर नहीं रहा है, अधेले का लेते आना" तो आपने तुरन्त उत्तर दिया, वह जो लाल स्याही की दावात ऊपर रक्खी है उसमें आज ही एक नई गोली डाली है, उसी से अपना काम चलाना; और या, न हो तो, वह जो लाल कनकौआ परसों हमने छत पर तोड़ लिया था उसमें से फाड़ कर थोड़ा कागज का टुकड़ा चिपका लिया करो। अभी सिंदूर के लिये पैसा कहाँ! किताबों की वीपियाँ गई हैं, दाम आने पर ला देंगे।"

टलास्त्रीजी ने देखा कि प्रकाशन का काम धड़ल्ले से चल ही रहा है, ऐसे में लेखक, सम्पादक आदि भी बन बैठने का पूरा मौका है। यही नहीं, इस सुअवसर को यों ही गँवा देना मूर्खता—और सो भी उच्च कोटि की—है। बस, आपने अपने काम के ढंग में तुरन्त कुछ 'सुधार' कर दिये। जितने बड़े-बड़े लेखक थे उनको अपने पास से किराया देकर, बड़ी ही विनम्रता के साथ पीछे पड़ कर, अपने यहाँ निमन्त्रित किया। यदि किराये में २) खर्च हुये तो आपने ५) दिये। उन्हें खूब ही मिठाई खिलाई जिससे कि उन्हें कुपच हो गया और, दो-एक दिन मे घर लौटना तो रहा एक ओर, उन बेचारों को दस-पन्द्रह दिन उन्हीं के यहाँ खटिया तोड़नी पड़ी। इस बीच में उन्होंने उनकी खूब ही सेवा की और कराई। सिविल सर्जन से लगाकर हकीम जानमारू अलीखाँ साहब तक को १६) देकर बुलाया। चिकित्सकों, मोटरों और ताँगों का ताँता बाँध दिया। जब लेखकजी कुछ स्वस्थ हुए तब उन्हें जबर्दस्ती सिनेमा दिखाने ले गये। यों आतिथ्य सत्कार के समुद्र में उन्हें वह वह गहरी डुबकियाँ दीं कि उनके हृदय पर इनकी उदारता, गुण-ग्राहकता, भलमनसाहत और वैभव की पूरी छाप लगे बिना न रही। इसी प्रकार अच्छे अच्छे लेखकों को वश में करके सर्वसाधारण में और समाचार पत्रों में इन्होंने उनसे

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

अपनी खूब ही प्रशंसा करा ली, यहाँ तक कि दो एक से तो, खुशामद दरामद करके, पुस्तकों का समर्पण भी करा लिया।

यह तो हुई बढ़िया लेखकों की बात, अब साधारण लेखकों के विषय में सुनिये। जब कोई साधारण लेखक इनके यहाँ आता तब उसका खूब ही सत्कार किया जाता और उसके सामने ये प्रस्ताव रक्खे जाते:—(१) पुस्तक छोड़ जाइये; यदि हमें पसन्द आगई तो हम उस पर—औरों को तो एक ही आना देते हैं—आपको, खैर, डेढ़ आना पेज पुरस्कार दे देंगे। इससे अधिक पुरस्कार देना हमारे सामर्थ्य के बाहर है। (२) हाँ, यदि आप इससे अधिक पुरस्कार लेना चाहते हैं, अथवा यदि आपको धन की आवश्यकता है, तो वैसो कहिए। हमारे यहाँ एक और गुप्त नियम है जो हर किसी को नहीं बताया जाता, केवल उन्हीं को बताया जाता है जो इसके पात्र समझे जाते हैं। जो हिन्दी-सेवा अपने नाम के लिये नहीं बल्कि अपना पवित्र कर्त्तव्य समझ कर करते हैं। उस पवित्र नियम के अनुसार पुरस्कार चौगुना तक मिल जाता है, परन्तु पुस्तक पर लेखक का नाम नहीं छापा जाता; हमें अधिकार रहता है कि हम जिसका चाहें उसका नाम छाप दें, अथवा किसी का भी न छापें। आप सज्जन हैं, अतएव आपको, अपनी कृति पर और किसी का नाम देखना शायद अच्छा न लगे, ऐसी दशा में आपका उत्साह बढ़ाने के लिए, खैर, हम अपना ही नाम उस पर छपा देंगे। उस दशा में हम ।) से ।=) पेज तक आपको दे सकेंगे; पर कहीं और किसी से न कह दीजियेगा कि हमने आपको क्या दिया है, वरना भाव बिगड़ जायगा। ये व्यापारिक-कला की बातें हैं। इन्हें अभी आप नहीं समझते। (३) आज-कल लोग बड़ी ही शिथिल भाषा लिखते हैं, हमें बड़े से बड़े लेखकों की भाषा की मरम्मत, प्रूफों में करनी पड़ती है। अतएव जिन पुस्तकों पर हमारा नाम लेखक की हैसियत से नहीं छपता उन पर हम सम्पादकरूप में अपना नाम दे देते हैं, और यह, हमारे

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

परिश्रम को देखते हुए, उचित भी है। आशा है आप इस विषय में हमसे सहमत होंगे।

यों बातें मारमूर कर लेखक को पटील लिया जाता था। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि लेखक की पुस्तक, उसका उत्साह बढ़ाने के लिए, दो तीन वर्ष तक पड़ी रहने दी, और बाद को, उसकी प्रतिलिपि कराकर और 'नापसंद है' लिख कर लौटा दी! बड़े लेखकों को जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है—खूब ही बना लिया जाता था। उनसे इतनी प्रशंसा करा ली जाती थी कि फिर जब उनके साथ दुर्व्यवहार का युग आरम्भ होता तो वे ताकते हो रह जाते थे। कुछ कह इसलिए नहीं सकते थे कि उनके मुँह में उन्हीं का, पहले से लगाया हुआ, प्रशंसारूपी ताला पड़ जाता था; कुछ लिख इसलिए नहीं सकते थे कि पहले से उन्हीं की तैयार की हुई प्रशंसापूर्ण लेख-रूपी रस्सी से उनके हाथ बँधे होते थे।

—२—

टटोलूरामजी का कार्यालय जिस नगर में था वह युक्तप्रान्त का एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान भी था। वहाँ नित्य नये आदमी आते रहते थे। कार्यालय भी ऐसे स्थान पर था कि पुण्यतोया नदी में स्नान करने जाओ तो मार्ग में पड़े। साइनबोर्ड तो कई थे पर सबसे मार्के का वह था जो लड़कों का बना हुआ था। सवेरे ही, आठ-आठ नौ-नौ बरस के कइ लड़के, काठ के बने हुए—कार्यालय के नाम के—एक-एक बड़े अक्षर को लेकर एक पंक्ति में खड़े हो जाते और बाँसुरी और खंजरी की मधुर ध्वनि से पथिकों का ध्यान आकर्षित करते थे! सबकी एक सी पोशाकें और प्रायः एक सी सूरतें थीं। कुछ घंटों के बाद दूसरा समूह उनकी जगह काम पर आ जाता था। इस प्रकार दिन में कई बार पारी बदलती थी। इस विचित्र साइनबोर्ड की बदौलत दूकान के सामने, जब देखो तब, मेला लगा रहता था। बिक्री भी खूब होती थी। जिसकी ऐसी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

कार्य-कुशलता और जिसका इतना वैभव हो उसके यहाँ काम करने से लक्ष्मी तो क्या, लक्ष्मी का बाप आवेगा, यही सोच कर, विद्वान् परन्तु निर्धन, पण्डित वैयाकरण बलीवर्दजी 'तीर्थ'—आये थे तो तीर्थयात्रा करने पर काम मिलने का सुयोग देख कर ठहर गये और टटोलूरामजी के यहाँ कुछ काम करने लगे। तीर्थजी की अनेक पुस्तकें संचालक जी के नाम से छपीं, अनेकों का सम्पादन हुआ, कई का समर्पण भी। तीर्थजी ने संचालकजी की प्रशंसा में लेख और कवितायें छपाईं। तीन चार वर्ष तक 'तोहि और न मोहि ठौर' की कहावत खूब चरितार्थ होती रहीं। इसके बाद बलीवर्दजी के उच्च के ग्रहों के टलने का समय आया। उन पर संचालकजी का वह प्रेम नहीं रहा, और धीरे से उनका हिसाब अटका लिया गया। प्रेम न रहने का कारण यह हुआ कि तीर्थजी ने जन्म भर परिश्रम करके पाणिनि के पिता के सम्बन्ध में जो एक अद्भुत ग्रन्थ लिखा था उसे वे संचालकजी के नाम से छपाने को तैयार न हुए। यह क्या कोई साधारण अपराध था? इस पर तो तीर्थजी के लिए फांसी की सजा भी थोड़ी थी, सो दयालु संचालकजी ने तो केवल उनके १५०) ही दबाकर संतोष कर लिया था! भला, उनके गुरुतम अपराध के लिए यह कौन बहुत बड़ा जुर्माना हुआ! मान लीजिए, ये रुपये उन्हें दे ही दिये जाते, और तब उनके यहां से कोई चोर उठा ले जाता, तो वैयाकरणजी कौन से सूत्र से इस रकम की सिद्धि करते?

—३—

जब किसी गरीब साहित्य-सेवी का रुपया दबा लिया जाता है तब उसके मन पर कैसी बीतती है यह भुक्तभोगी ही जानते हैं। वैयाकरणजी को ऐसा लग रहा था मानों कोई उनका गला घोंटे दे रहा हो। न किसी से कहने के, न सुनने के! चुपचाप—मन ही मन—अपने को कोसा करते कि क्यों मैंने इस दुष्ट बनिये का विश्वास किया, जब कि मैं प्रत्यक्ष

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

देख रहा था कि धीरे-धीरे यह सबके साथ विश्वासघात करता चला जा रहा है ! धिक्कार है ब्राह्मणों की प्रकृति मूर्खता को ! गायत्री के लाखों जप कर डालने पर भी ब्राह्मणों का भोंदूपन दूर नहीं हुआ ! ब्राह्मणों के रहन-सहन में अवश्य ही कहीं पानी मरता है जो इतनी संध्या-पूजा करने पर भी ये इतने मूढ़ हैं ।

जब ये इस प्रकार आत्म-फटकार में लगे हुए थे तब ईश्वर ने भी सोचा कि भक्त की परीक्षा का यही समय है । घर से एक पत्र आया कि पत्नी का परसूत उखड़ आया है और बचने की कोई आशा नहीं; क्योंकि पड़ोस के वैद्य, जिनकी दवा से वे सदा अच्छी होती रही थीं, मौका देखकर, परलोक को सिधार गये हैं । पत्र पढ़ते ही तीर्थजी विकल होकर चिल्ला उठे, 'भगवान् आयु थोड़ी दे, पर दुख न दे ।' आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई । 'हाय, जीवन की संगिनी, दुख-सुख की साथिन, सहानुभूति की मूर्ति वहाँ बिदा हुई जा रही है, और मैं, निरपराध पक्षी की भाँति, इस कठोर बहेलिये के जाल में बेबस पड़ा हुआ तड़प रहा हूँ ! जाऊँ तो तब जब कम्बख्त रुपया दे ! इतनी प्रार्थनाएँ कीं, इतना रोया-गिड़गिड़ाया, इतने पत्र-पुष्प मारे, पर यह संचालक-अजगर टस से मस नहीं होता ! लोटा-थाली तक बेचकर खा गया; यहाँ तक कि अब बेचने के योग्य भी कोई चीज नहीं रह गई हैं; फिर जाऊँ तो कैसे जाऊँ ? स्त्री तो अभी तक मर भी गई होगी ।' इसी प्रकार के विचारों के समुद्र में गोते लगाते लगाते तीर्थ जी को एक तिनके का सहारा मिल गया । उन्होंने सोचा संचालक को बिहारी-सतसई से बड़ा प्रेम है । यदि मैं उसी की टक्कर के दोहों में अपने मनोभाव प्रकट कर सकूँ तो कैसा हो ? बिहारी के केवल एक ही दोहे पर जयपुर के राजा अपने कर्तव्य की ओर सावधान हो गये थे, फिर क्या मेरे कई दोहों से भी संचालक को चेत न होगा ? क्या यह ऐसा पाषाण-हृदय है ? कभी नहीं । यह सोचकर तीर्थजी ने अपने बुद्धि-तरकस से निकाल कर सात दोहे का एक

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

कार्य-कुशलता और जिसका इतना वैभव हो उसके यहाँ काम करने से लक्ष्मी तो क्या, लक्ष्मी का बाप आवेगा, यही सोच कर, विद्वान् परन्तु निर्धन, पण्डित वैयाकरण बलीवर्दजी 'तीर्थ'—आये थे तो तीर्थयात्रा करने पर काम मिलने का सुयोग देख कर ठहर गये और टटोलूरामजी के यहाँ कुछ काम करने लगे। तीर्थजी की अनेक पुस्तकें संचालक जी के नाम से छपीं, अनेकों का सम्पादन हुआ, कई का समर्पण भी। तीर्थजी ने संचालकजी की प्रशंसा में लेख और कवितायें छपाईं। तीन चार वर्ष तक 'तोहि और न मोहि ठौर' की कहावत खूब चरितार्थ होती रहीं। इसके बाद बलीवर्दजी के उच्च के ग्रहों के टलने का समय आया। उन पर संचालकजी का वह प्रेम नहीं रहा, और धीरे से उनका हिसाब अटका लिया गया। प्रेम न रहने का कारण यह हुआ कि तीर्थजी ने जन्म भर परिश्रम करके पाणिनि के पिता के सम्बन्ध में जो एक अद्भुत ग्रन्थ लिखा था उसे वे संचालकजी के नाम से छपाने को तैयार न हुए। यह क्या कोई साधारण अपराध था? इस पर तो तीर्थजी के लिए फांसी की सजा भी थोड़ी थी, सो दयालु संचालकजी ने तो केवल उनके १५०) ही दबाकर संतोष कर लिया था! भला, उनके गुरुतम अपराध के लिए यह कौन बहुत बड़ा जुर्माना हुआ! मान लीजिए, ये रुपये उन्हें दे ही दिये जाते, और तब उनके यहां से कोई चोर उठा ले जाता, तो वैयाकरणजी कौन से सूत्र से इस रकम की सिद्धि करते?

—३—

जब किसी गरीब साहित्य-सेवी का रुपया दबा लिया जाता है तब उसके मन पर कैसी बीतती है यह भुक्तभोगी ही जानते हैं। वैयाकरणजी को ऐसा लग रहा था मानों कोई उनका गला घोंटे दे रहा हो। न किसी से कहने के, न सुनने के! चुपचाप—मन ही मन—अपने को कोसा करते कि क्यों मैंने इस दुष्ट बनिये का विश्वास किया, जब कि मैं प्रत्यक्ष

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

देख रहा था कि धीरे-धीरे यह सबके साथ विश्वासघात करता चला जा रहा है ! धिक्कार है ब्राह्मणों की प्रकृति मूर्खता को ! गायत्री के लाखों जप कर डालने पर भी ब्राह्मणों का भोंदूपन दूर नहीं हुआ ! ब्राह्मणों के रहन-सहन में अवश्य ही कहीं पानी मरता है जो इतनी संध्या-पूजा करने पर भी ये इतने मूढ़ हैं ।

जब ये इस प्रकार आत्म-फटकार में लगे हुए थे तब ईश्वर ने भी सोचा कि भक्त की परीक्षा का यही समय है । घर से एक पत्र आया कि पत्नी का परसूत उखड़ आया है और बचने की कोई आशा नहीं; क्योंकि पड़ोस के वैद्य, जिनकी दवा से वे सदा अच्छी होती रही थीं, मौका देखकर, परलोक को सिधार गये हैं । पत्र पढ़ते ही तीर्थजी विकल होकर चिल्ला उठे, 'भगवान् आयु थोड़ी दे, पर दुख न दे ।' आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई । 'हाय, जीवन की संगिनी, दुख-सुख की साथिन, सहानुभूति की मूर्ति वहाँ बिदा हुई जा रही है, और मैं, निरपराध पक्षी की भाँति, इस कठोर बहेलिये के जाल में बेबस पड़ा हुआ तड़प रहा हूँ ! जाऊँ तो तब जब कम्बख्त रुपया दे ! इतनी प्रार्थनायें कीं, इतना रोया-गिड़गिड़ाया, इतने पत्र-पुष्प मारे, पर यह संचालक-अजगर टस से मस नहीं होता ! लोटा-थाली तक बेचकर खा गया; यहाँ तक कि अब बेचने के योग्य भी कोई चीज नहीं रह गई है; फिर जाऊँ तो कैसे जाऊँ ? स्त्री तो अभी तक मर भी गई होगी ।' इसी प्रकार के विचारों के समुद्र में गोते लगाते लगाते तीर्थ जी को एक तिनके का सहारा मिल गया । उन्होंने सोचा संचालक को बिहारी-सतसई से बड़ा प्रेम है । यदि मैं उसी की टक्कर के दोहों में अपने मनोभाव प्रकट कर सकूँ तो कैसा हो ? बिहारी के केवल एक ही दोहे पर जयपुर के राजा अपने कर्तव्य की ओर सावधान हो गये थे, फिर क्या मेरे कई दोहों से भी संचालक को चेत न होगा ? क्या यह ऐसा पाषाण-हृदय है ? कभी नहीं । यह सोचकर तीर्थजी ने अपने बुद्धि-तरकस से निकाल कर सात दोहे का एक

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पत्र-बाण छोड़ा, जिसे वे अमोघ समझते थे। बाण की पूँछ की भाँति उन्होंने प्रत्येक दोहे के पीछे एक दुम भी लगा दी जिसमें वह अवश्य, ठीक सीध में जाकर, लक्ष्य को वेध दे। पत्र यह था:—

नित नूतन बातन बना करत 'सुबह' अरु 'स्याम'
रचन बचन मम मन बसौ सदा टटोलूराम।
जपौं नित तोहि मैं।

(१)

माल परायौ मारिकै फिर जनि लेत डकार;
लालन तुम नीके बने हिन्दी-पालन-हार।
बकसिये याहि तौ।

(२)

ऊँट टटोलूराम हैं पुस्तकमाला डाढ़,
पुरस्कार जीरा अहै चतुर देय कोउ काढ़।
न मेरौ बसु चलै।

(४)

स्याम नचावत जगत कौं कुबजा तिनहिं नचाय,
सबहिं छकावत हम थके सो तुम दिये छकाय।
रहि गये टापते।

(५)

मेद कटी मम देह को फिरत तिहारी पोर;
पै चित-चोर न ओर मम करत अजहुँ दृग-कोर।
चरनदासी फटीं।

(६)

कौन पाप अति पीन जो तो पै कीन-यकीन,
हे प्रवीन मोहि दीन लखि उधरहु चतुर-धुरीन।
भयौ अति आतुरी।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

(७)

बहुत करी तुम्र चाकरी अब जाऊँ निज गेहु;
दया करहु पाँयन परत पुरस्कार मोहि देहु ।
करूँ आदाबरज ।

खेद की बात है कि जिसे तीर्थजी रामबाण समझे थे वह—संचालक के हृदय को वेधना तो एक ओर रहा—उसके कुरते के बटन तक को न वेध सका । उस चिकने घड़े पर यह बूँद भी न ठहरी—ढलक कर पृथ्वी पर गिर पड़ी और धूल में मिल गई । तीन चार दिन बीत जाने पर और उत्तर न मिलने पर तीर्थजी बिलकुल ही हताश हो गये । अब उनकी बेबसी ने उग्ररूप धारण किया । और कोई उपाय न देख कर ब्राह्मणोचित कोप के वशीभूत होकर उन्होंने नदी में डूब मरने का निश्चय किया । इस 'निश्चय' को कार्यरूप में परिणत करने के लिए एक दिन सबेरे ही वे झपटते हुए नदी-किनारे पहुँचे । संयोग से उस दिन कोई पर्व था । इसलिए भीड़-भाड़ भी खूब थी । भीड़-भाड़ की पोल में डूबने का अत्युत्तम अवसर कहीं यों ही न निकल जाय यह सोचते हुए तीर्थजी जल में आगे बढ़ते चले गये । उपनिषद् के 'असूर्यानाम ते लोकाः' आदि मन्त्र तो उन्हें शायद याद ही नहीं आये, हाँ इस बात का खुटका मिटाने के लिए कि उनके मन का भाव ताड़ कर कहीं कोई उन्हें पकड़ने तो नहीं आ रहा है, वे बार बार लौट कर पीछे देख लेते थे । नरक में जाने और कष्ट पाने के सम्बन्ध में उन्होंने अपने मन का समाधान यों कर लिया था कि कातर और निराश को भय किसका ? नरक में दुःख मिलेगा, दुःख ही सही; नादिहन्द संचालकों से तो पाला नहीं पड़ेगा, मरने और जीने के बीच की इस त्रिशंकु की दशा से तो पीछा छूटेगा ।

विचारों में मग्न तीर्थजी अब लगे अथाह जल में डुबकियाँ लेने ।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तीर्थजी का वश चलता तो वे, एक बार पानी में डूब कर, फिर न उछलते, जिसमें कोई उन्हें देख न ले। पर नदी का जल, उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें बार बार ऊपर उछाल कर और 'ये चले !' 'ये चले !' शब्द करके मानों व्याकरण के सभी सूत्रों की अवहेलना कर रहा था ! इधर तीर्थजी उससे मन ही मन यह कहते जाते थे कि 'अरे मूर्ख, सच मान, मैं जान बूझ कर डूब रहा हूँ, अकस्मात् नहीं; दुष्ट, क्यों मुझे बार बार ऊपर उछाल रहा है ?' और उधर वह अधिकाधिक उनके पेट में भरता जा रहा था। क्षण भर में वे प्रायः संज्ञाशून्य हो गये। इतने में किसी ने उनकी चुटिया पकड़ कर झटका दिया। तीर्थजी ने समझ लिया कि यमदूत आ गये और मुझे चुटिया पकड़ कर यमलोक की ओर खींच रहे हैं। तीर्थजी की आँखें बन्द थीं। यमदूतों ने उन्हें उलटा किया और चपतें मारीं। उनके कान में, कहीं बहुत दूर से, ये शब्द आये—'साले, तैरना नहीं आता था तो आगे क्यों बढ़ता चला गया था ?' यमलोक में भी खड़ी बोली बोली जाती है यह तीर्थजी को आज ही मालूम हुआ; वे अब तक इसी धोखे में थे कि परलोक में सभी जगह संस्कृत का दौरदौरा है। इसके बाद किसी ने उनका मुँह फाड़ कर विष-सरीखी कोई कड़वी चीज उड़ेल दी। इसके बाद क्या हुआ, पता नहीं। चार पाँच घंटे बाद जो उनकी नींद खुली तो देखा कि बचपन के सखा वकील लूटूलालजी पास बैठे मुसकरा रहे हैं। उन्हें देखते ही तीर्थजी लपक कर उठ खड़े होने की चेष्टा करते हुए बोले, "हैं ! लूटू ! तुम यहाँ कब के आये ! मैं जो तुमसे कहा करता था कि वकील लोग अवश्य नरक में जायेंगे ! चलो, तुमसे यहाँ मन तो बहला रहेगा।"

वकील साहब ने तीर्थजी को उठने नहीं दिया और कहा, "अब तुम बहत बातें फिर कर लेना। चुपचाप पड़े रहो; वरना थक जाओगे, पंडा दूध लेने गया है; अभी आता होगा; घबड़ाओ मत।"

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

फिर उठने की चेष्टा करते हुए तीर्थजी ने कहा, "पर, मित्र, यह तो बताओ कि यह है कौन सा—रौरव या कुम्भीपाक ?" वकील ने 'न मानोगे तुम' कहते हुए अपने हाथ से उनका मुँह बन्द कर दिया। थोड़ी देर में दूध आगया और वह तीर्थजी को, पकड़-पकड़ करके, पिला दिया गया। अब तीर्थजी के होश ठिकाने आये। वकील ने उनकी उत्सुकता मिटाने के लिए उनसे सब हाल कह दिया कि किस प्रकार वे डूब रहे थे और घाटवालों ने उन्हें निकाला, कैसे वकील साहब भीड़ में आ मिले और उन्हें पहचान कर अपने पंडे के यहाँ ले आये जहाँ वे दो दिन से ठहरे हुए हैं। इधर धीरे धीरे तीर्थजी ने भी अपनी सारी गाथा गाई जिसे सुनकर वकील साहब को बड़ा आश्चर्य और क्रोध हुआ, और बोले, "मैं इस बेईमान को ऐसा नहीं समझता था; यह तो बहुत बड़ा आदमी समझा जाता है !"

वकील साहब ने उन्हें भरोसा दिलाया कि मैं तुम्हारे रुपये वसूल करा दूँगा। तीर्थजी ने कहा, "अजी मैंने छोड़े ऐसे रुपये, चूल्हे में जाने दो उन्हें; अब तुम मिल गये हो तो, भैया, कम से कम इतना तो करो कि मुझे तीसरे दरजे का टिकट दिला कर अपने साथ घर ले चलो। मैंने हाथ जोड़ा इन रुपयों को भी और हिन्दी सेवा को भी।"

वकील साहब को कुछ सनक सवार हो गई। उन्होंने पूछा, "यह आदमी तुमको रुपया नकद देता था या चैक से।

तीर्थजी—चैक-द्वारा।

वकील ने गंभीर होकर कहा, 'हूँ; बंक को बीच में डाल कर रुपये की अदायगी करता था। बड़ा भारी चालाक है !"

थोड़ी देर सोचने के बाद वकील ने पूछा, "अच्छा, तुम यह तो बताओ कि तुमने इसे आज तक कभी यह लिखकर दिया कि हम अपनी पुस्तकों का कापी राइट तुम्हें बेचते हैं ?"

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तीर्थजी बोले, "मुझसे कहा तो कई बार; मैंने भी कहा कि जब चाहो लिखवा लो; पर नौबत इसकी आज तक नहीं आई।"

वकील साहब, मारे हर्ष के, उछल पड़े, मानो भूखे को मालपुए मिल गये हों, और बोले, "तो तुम्हारी जो पुस्तकें इसने अपने नाम से छाप ली हैं उनको तो जाने दो, यह बताओ कि ऐसी कितनी पुस्तकें हैं जो तुम्हारे ही नाम से छपी हैं ?"

तीर्थजी ने उत्तर दिया, "मेरी ही सत्रह अठारह पुस्तकों की बदौलत यह धूर्त आज लेखक बन बैठा है; वरना इसको आता ही क्या है ? अपना नाम तक तो ठीक लिख ही नहीं सकता ! हां, तुमने जो पूछा—मेरी केवल दो पुस्तकें मेरे नाम से छपी हैं।"

वकील—केवल दो ! और सत्रह अठारह अपने नाम से छपा लीं इसने !! हाथी निगल गया हाथी !!! हद हो गई। हाँ, तो तुमने क्या कहा था ? दोनों पुस्तकों का पुरस्कार ३००) हुआ जिसमें से तुम्हें केवल १५०) दिये हैं और बाकी के लिए सुट्ट खींच गया है ! अहाहाहा ! लो, और लिखो किताबें ! मैंने पहले ही समझाया था कि किताबें लिखनेवाले हमेशा रोते रहते हैं। अच्छा बोलो, अगर मैं तुम्हारे रुपये कल ही, खड़े खड़े, दिलवा दूं तो तुम मुझे क्या दोगे ?

तीर्थजी—अरे मित्र, मुझे तीसरे दरजे का टिकट दिला दो, बाकी सब तुम्हीं ले लो; वसूल तो करो किसी प्रकार। अब तुमने मुझे बचा लिया है तो कम से इतना तो करो; हाँ।

वकील—अच्छा, अब तुम आराम करो, मैं जाता हूँ इसी फिक्र में। डेढ़ दो घंटे में आऊँगा। पंडाजी के पास पैसे हैं, तुम्हें जो चाहिये मँगा लेना। दूध दो एक बार अवश्य पीना—गरमागरम।

यों कहकर वकील साहब चल दिये। तीर्थजी पड़े पड़े यही सोचा किये कि पर-हस्तगत अर्थ की सिद्धि के नियम अवश्य ही न तो पाणि-

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

नीय में हैं और न महाभाष्य में, ये तो इन कलियुगी वकालत की ही किताबों में हैं ऐसा अनुमान होता है।

यही सोचते सोचते तीर्थजी को वह गहरी नींद आई कि मृत्यु से स्पर्धा करने लगे!

उधर वकील साहब ने घूम फिर कर और एक स्थानीय वकील से परिचय निकाल कर अपना काम बताया; वह यह कि 'एक नोटिस मैं लिखे देता हूँ आप कृपया अपने नाम से उसे चलता कीजिये। हाल तो राजीनामा हो ही जायगा, यदि न हो तो आप इस मुकदमें को अपने हाथ में लीजियेगा। जो खर्च पड़ेगा, मैं दूँगा।'

स्थानीय वकील को इसमें कोई आपत्ति न हुई। नोटिस रजिस्ट्री कराने भेज दिया गया। उसमें जो लिखा था उसका सार यह है कि 'आर्य-नरेन्द्र' व 'रामदिग्विजय' के केवल पहले संस्करण के लिये जो पुरस्कार देने का तुमने वचन दिया था उसका केवल तिहाई अभी तक दिया है; अगर पन्द्रह दिन के अन्दर बाकी रुपया नहीं दे दिया गया तो उसके लिये तुम पर नालिश कर दी जायगी, और उक्त पुस्तकें, इस बात की राह न देख कर कि तुम्हारा पहला संस्करण बिका या नहीं दूसरे संस्करण के लिये किसी और प्रकाशक को दे दी जायँगी।

—५—

अदालत के डर से बड़े-बड़े तीस-मारखाओं के छक्के छूट जाते हैं। दूसरे दिन टटोलूराम को नोटिश मिला जिसे पाते ही वे दौड़ते फिरे। इस वकील के पास जा, उस वकील के पास जा, करते करते जब उन्होंने देखा कि मुकदमा हार जाना भी संभव है तब वे उसी स्थानीय वकील के पास आये जिसकी मारफत नोटिस दिया गया था, और वहाँ से पता लगाकर पंडे के यहाँ आ पहुँचे। देखा तो तीर्थजी समाचार-पत्रों के लिये एक लेख तैयार कर रहे हैं जिसमें टटोलूरामजी की कार्य-प्रणाली का भण्डाफोड़ किया जा रहा है। वकील साहब तो वहाँ थे ही।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

बहुत देर तक बातें होती रहीं। अन्त में वकील साहब ने कहा, "जनाब, आपने इन्हें बहुत ठगा है, पर अब ऊँट पहाड़ के नीचे आ गया है। अधिक वाद-विवाद करना व्यर्थ है, या तो आप सीधी तरह से १५०) पुरस्कार और १५०) अपनी धूर्त्तता के दण्ड-स्वरूप इनके हाथ धरिये, वरना फिर देखियेगा कि अदालत में क्या-क्या गुल खिलते हैं। न सब हिन्दी-संसार हँसते हँसते लोट-पोट हो जाय तो कहिएगा। आप भी क्या याद रखेगें कि किसी से अटके थे।" मीठी बातें, झूठी प्रतिज्ञाएँ, भविष्य के लिये बड़े-बड़े भरोसे आदि झाँसों में जब वकील साहब न आये तो हताश होकर टटोलूराम को ३००) देकर ही उनसे समझौता करना पड़ा। तीर्थजी ने पुस्तकों का अधिकार-पत्र उनके नाम लिख दिया। उस कागज को जेब में रखकर ठंडी साँसे लेते हुए टटोलूराम अपने घर आये। रुपये निकल जाने का घोर दुःख था, यदि संतोष था तो यही कि अदालत में भंडा न फूटने पाया, वरना हमेशा के लिये किरकिरी हो जाती और फिर कभी कोई उल्लू न फँसता। अतएव, इन मोलों यह सौदा बुरा भी नहीं रहा। उधर तीर्थजी जो वकील साहब के साथ गये सो फिर इधर आने का कभी नाम भी न लिया, और न हिन्दी में कभी कोई उनकी रचना ही पढ़ने को मिली।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

जंगल की दुलहन

[श्री श्रीराम शर्मा]

घरों और मार्गों से दूर, वन के बीच, खिले सौरभमय सुमनों का आनन्द थोड़े ही व्यक्ति लेते हैं। उँगलियों पर गिने जानेवाले प्रकृति प्रेमियों की ही यहाँ तक पहुँच होती है। ऐसे लोग उस दिव्यसुरभिरूपी गन्ध का पान भले ही कर लें, नहीं तो वे कमनीय फूल महक कर योंही मुरझा जाते हैं। हाँ, गन्धहीन, दिखावटी पुष्पों के सौन्दर्य पर कवियों की कोमल-सी कल्पनाएँ जरूर जौहर दिखाया करती हैं। जिस प्रकार एकान्तवासी पौदों पर खिले सुमनों की सुरभि का कोई मजा नहीं लेता, उन पर कोई विरला ही लिखता है, उसी प्रकार सीधे-सादे देहातियों के शौर्य अद्भुत प्रेम और त्याग-सम्बन्धी बातों का लोगों को पता तक नहीं चलता। उनकी बातें प्रकाशन के चौंध से परे होती हैं। जंगली फूलों की महक के समान उनके साहसपूर्ण कार्यों की प्रशंसा आसपास ही फैलकर लुप्त हो जाती है।

× × × ×

गया जिले में एक मनुष्यभक्षी बाघ के मारनेवाले को तीन सौ रुपये के पुरस्कार की घोषणा सरकार की ओर से की गई। बघेरा कुछ बच्चों को उठा ले गया था, और एक युवा पुरुष को भी उसने मार डाला था। वह इतना चालाक था कि बहुत प्रयत्न करने पर भी किसी के हाथ न आया। अन्त में मानभूमि जिलों में चला गया और एक छोटे जमींदार के इलाके में उसने अपना अड्डा जमाया। बूढ़े जमींदार के गाँव से बघेरा एक पाँच-छह वर्षीय बालक को उठा ले गया, और कुछ ही दिन बाद, पड़ोस के गाँव से, एक दुधमुँहे बच्चे को माँ की गोद से छीन ले गया।

बूढ़ा जमींदार स्वयं एक नामी शिकारी था; पर नामी शिकारी होना

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

बहुत देर तक बातें होती रहीं। अन्त में वकील साहब ने कहा, "जनाब, आपने इन्हें बहुत ठगा है, पर अब ऊँट पहाड़ के नीचे आ गया है। अधिक वाद-विवाद करना व्यर्थ है, या तो आप सीधी तरह से १५०) पुरस्कार और १५०) अपनी धूर्त्तता के दण्ड-स्वरूप इनके हाथ धरिये, वरना फिर देखियेगा कि अदालत में क्या-क्या गुल खिलते हैं। न सब हिन्दी-संसार हँसते हँसते लोट-पोट हो जाय तो कहिएगा। आप भी क्या याद रक्खेगें कि किसी से अटके थे।" मीठी बातें, झूठी प्रतिज्ञाएँ, भविष्य के लिये बड़े-बड़े भरोसे आदि झाँसों में जब वकील साहब न आये तो हताश होकर टटोलूराम को ३००) देकर ही उनसे समझौता करना पड़ा। तीर्थजी ने पुस्तकों का अधिकार-पत्र उनके नाम लिख दिया। उस कागज को जेब में रखकर ठंडी साँसे लेते हुए टटोलूराम अपने घर आये। रुपये निकल जाने का घोर दुःख था, यदि संतोष था तो यही कि अदालत में भंडा न फूटने पाया, वरना हमेशा के लिये किरकिरी हो जाती और फिर कभी कोई उल्लू न फँसता। अतएव, इन मोलों यह सौदा बुरा भी नहीं रहा। उधर तीर्थजी जो वकील साहब के साथ गये सो फिर इधर आने का कभी नाम भी न लिया, और न हिन्दी में कभी कोई उनकी रचना ही पढ़ने को मिली।

———

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

जंगल की दुलहन

[श्री श्रीराम शर्मा]

घरों और मार्गों से दूर, वन के बीच, खिले सौरभमय सुमनों का आनन्द थोड़े ही व्यक्ति लेते हैं। उँगलियों पर गिने जानेवाले प्रकृति प्रेमियों की ही यहाँ तक पहुँच होती है। ऐसे लोग उस दिव्यसुरारूपी गन्ध का पान भले ही कर लें, नहीं तो वे कमनीय फूल महक कर योंही मुरझा जाते हैं। हाँ, गन्धहीन, दिखावटी पुष्पों के सौन्दर्य पर कवियों की कोमल-सी कल्पनाएँ जरूर जौहर दिखाया करती हैं। जिस प्रकार एकान्तवासी पौदों पर खिले सुमनों की सुरभि का कोई मजा नहीं लेता, उन पर कोई बिरला ही लिखता है, उसी प्रकार सीधे-सादे देहातियों के शौर्य अद्भुत प्रेम और त्याग-सम्बन्धी बातों का लोगों को पता तक नहीं चलता। उनकी बातें प्रकाशन के चौंध से परे होती हैं। जंगली फूलों की महक के समान उनके साहसपूर्ण कार्यों की प्रशंसा आसपास ही फैलकर लुप्त हो जाती है।

× × × ×

गया जिले में एक मनुष्यभक्षी बाघ के मारनेवाले को तीन सौ रुपये के पुरस्कार की घोषणा सरकार की ओर से की गई। बघेरा कुछ बच्चों को उठा ले गया था, और एक युवा पुरुष को भी उसने मार डाला था। वह इतना चालाक था कि बहुत प्रयत्न करने पर भी किसी के हाथ न आया। अन्त में मानभूमि जिलों में चला गया और एक छोटे जमींदार के इलाके में उसने अपना अड्डा जमाया। बूढ़े जमींदार के गाँव से बघेरा एक पाँच-छह वर्षीय बालक को उठा ले गया, और कुछ ही दिन बाद, पड़ोस के गाँव से, एक दुधमुँहे बच्चे को माँ की गोद से छीन ले गया।

बूढ़ा जमींदार स्वयं एक नामी शिकारी था; पर नामी शिकारी होना

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

किसी जमींदार का कोई गुण-विशेष नहीं है। जमींदार को किसान-वत्सल होना चाहिए, किसानों को अपनी भुजा समझनी चाहिए और जो कुछ वे जमींदार को देते हैं, उसका कुछ-न-कुछ भाग, किसी-न-किसी रूप में, किसानों को मिलना चाहिए। वह जमींदार भी ऐसा ही करता था—किसी नीति के खयाल से नहीं, वरन् अपना धर्म समझकर। अपने इलाके के लोगों को अपने हाथ से मुफ्त औषधि बाँटता और दूर के रोगियों को अपने यहाँ ठहरा कर भोजन तक देता। उनके सुख-दुख में हाथ बँटाता, और जादू-टोना तक उसी के हाथ से होता। उसके इलाके के आदमी भी आधे जङ्गली थे। मानभूमि जिले में रहनेवाले जङ्गली कहे जाने वाले लोगों में विवाह की प्रथा यह है कि कोई भी युवक किसी युवती से (अपने कुल के बाहर अपने इच्छानुसार विवाह कर सकता है। हाँ, उस युवती के पिता की स्वीकृति अवश्य लेनी पड़ती है। ऐसे लोकप्रिय जमींदार का, जो अपने इलाके के लोगों को सिद्धान्त और व्यवहार से अपने घर का ही आदमी समझे, कितना प्रभाव हो सकता है, इस बात की कल्पना सहज में ही की जा सकती है।

× × ×

बघेरे का उत्पात बढ़ता ही गया। उसके मारने का पुरस्कार भी तीन सौ से बढ़ाकर छः सौ कर दिया गया। बूढ़े जमींदार ने भी रुपयों के लालच से नहीं, वरन् आतंक-निवारण के लिए—उस बघेरे को मारने की ठानी। ऐसे अवसरों पर वह अपने सभी गाँवों से प्रसिद्ध शिकारियों को बुलाया करता और शिकार को जाने से पूर्व चाँदमारी (Target shooting) भी करता था। बूढ़े जमींदार के प्रति लोगों की इतनी श्रद्धा थी कि वे उसकी बात पर जान तक दे सकते थे। शिकार उन बड़े आदमियों के शिकार के समान न था जो अपने आमोद-प्रमोद के लिए भूखे-प्यासे किसानों को हाँके के लिए बेगार में बुला भेजते हैं। न आनेपर उन्हें सताते हैं और घंटों के हाँके के बाद उन्हें कुछ खाने तक को नहीं

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

देते। बूढ़े का जीवन तो अपने लोगों के लिए ही था। ख़बर पाकर सब लोग तीर-कमान लेकर आ गये। उन आनेवाले नामी शिकारियों में एक हृष्ट-पुष्ट जद्दू नाम का युवक भी था। एक प्रकार से वह सब शिकारियों का अगुआ था। तीर-कमान के निशाने में वह अपना सानी न रखता था। इसके अतिरिक्त वह एक कलाविद शिकारी भी था।

चाँदमारी की तैयारी हुई। जमींदार ने विजेता के पीने के लिए आसव भी लाकर रख दिया। जद्दू अपने निशाने में इतना प्रवीण था कि पचास क़दम पर खड़ी रखी हुई दियासलाई के सिरे को अपने तीर से बेध देता था; पर उस दिन की चाँदमारी में जद्दू का एक भी निशान ठीक न पड़ा। जब-जब उसकी बारी आती, तभी तब उसका निशान खाली जाता। उस दिन वह बड़ा ही व्यथित प्रतीत होता था। उसका ध्यान ही कहीं और था। लेने को तो वह निशान लेता था; पर उसका मन उसके साथ न था। उसकी आकृति मानो कहती थी—"इस चाँदमारी में विजेता होने और बाघ मारने से तेरा क्या बनेगा? तेरे शौर्य का इतना भी तो आदर नहीं, जो तेरी मनःकामना पूरी हो सके। तुझसे तो वे ही अधिक भाग्यशाली हैं, जो न तो अच्छे निशानची हैं और न बल-शाली ही।"

बात यह थी कि जद्दू एक युवती से विवाह करना चाहता था। वह युवती उस इलाके की परम सुन्दरी थी; पर जद्दू के कुटुम्ब और उस युवती के कुटुम्ब में पुरानी दुश्मनी चली आ रही थी, इसलिए उसके माता-पिता जद्दू से विवाह करने में अपनी स्वीकृति न देते थे। जद्दू ने बीसों बार बूढ़े जमींदार से अनुनय-विनय की कि वह बीच में पड़कर उसका विवाह करा दे। जद्दू और उस युवती लूती—ने जो प्रेम-बेलि बोई थी, वह बढ़ती ही गई; पर उनका मिलन न हुआ। दिन बीतने के साथ-साथ ही विरह और निराशाजन्य प्रेम में गुरुता और उत्पीड़न की मात्रा बढ़ती जाती थी। उस दिन चाँदमारी के अवसर पर तो जद्दू

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

का हृदय पुष्पधन्वा के तीरों से बिंधा पड़ा था। प्रतीक्षा की सीमा का उल्लंघन हो चुका था। निराशा के अतिरिक्त और कुछ उसे दिखायी ही न पड़ता था। निशाना किससे लिया जाता? वह स्वयं ही निशाना बना हुआ था।

चाँदमारी हो चुकने पर जद्दू ने जमींदार से फिर प्रार्थना की कि वह उसके विवाह के मामले में लूती के पिता से पुराने कौटुम्बिक वैर के भुलाने का आग्रह करे और उसको तथा लूती को विवाह सूत्र में बँधा दे। जमींदार ने जद्दू को बचन दिया कि यदि जद्दू, लोगों की रक्षा की खातिर, उस बघेरे के मारने में सफल हो सकेगा, तो वह उनके मनोवांछित विवाह में सहायक होगा। जद्दू ने सब के सम्मुख शपथ खाई कि वह उस मनुष्य भक्षी बघेरे का अवश्य हो वध करेगा। जमींदार ने वह विशेष आसव जद्दू को पीने के लिए दिया। जद्दू ने अभिमान और हर्ष के साथ उसका पान किया और प्रसन्न वदन वह अपने गाँव को चला गया। जद्दू निराशा-निशा में आया था;पर गया एक विजयी की भाँति,और सो भी आशा प्रभा की ज्योति में। जमींदार की वचन-ज्योत्स्ना में उसकी प्रेयसी लूती, लता की भाँति, उसकी ओर लहलहा रही थी; मानो प्रेमी से मिलने के लिए उसने अपनी लावण्यमयी भुजाएँ बढ़ाई हों,। जद्दू अपने घर की ओर जा रहा था; पर प्रसन्नता के कारण उसके पैर जमोन पर न पड़ते थे। तबीयत करती थी कि गाँव के कोने पर कहीं लूती मिल जाय, तो वह उसे अपनी चाल-ढाल से बता दे कि जमींदार के वचन से अब वह कौटुम्बिक वैर की उस खाई को पाट देगा जो उसके और लूती के बाच मुँह फाड़े खड़ी है।

× × ×

अगले दिन मध्याह्न को कई आदमी जद्दू के गाँव से जमींदार के पास आये, और बड़ी उत्तेजना के साथ उन्होंने कहा—"कमल-जैसी सुन्दर लड़की—लूती—को; जिसके रूप-लावण्य पर जद्दू निछावर हो चुका था आज प्रातःकाल बघेरा उठा ले गया। लूती अन्य लड़कियों की भाँति

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पनघट पर गगरी भरने गई थी कि एकदम बघेरा टूट पड़ा और उसे मुँह में दबाकर चम्पत हुआ। इतना बड़ा बघेरा हम लोगों ने अब तक कभी न देखा था। देखो लूती की ओढ़नी का यह एक टुकड़ा है, जो झाड़ी में उलझकर और फटकर वहीं रह गया था। लूती के माता-पिता इस घटना से इतने दुखी हैं, और ऐसे हक्के-बक्के हो गये हैं कि समझ में नहीं आता, उनको सान्त्वना कैसे दी जाय। जद्दू भी तभी से गायब है। कमान और तर्कश लेकर वह बघेरे के पीछे गया है और अपनी प्रेयसी की ख़ातिर बाघ से बदला लिए बिना उसे खाना-पीना हराम रहेगा।"

जमींदार ने वीरों का एक दल तैयार किया। उनके साथ उसने तीन दिन-रात जंगलों की खोज की; पर कुछ सफलता न मिली। बड़े आश्चर्य की बात तो यह थी कि कहीं भी घसीटन, जद्दोजहद और रक्त के चिह्न दिखाई नहीं दिये। यदि पनघट पर, जहाँ लूती पानी भरने गई थी, बड़े बघेरे के पंजों के खोज न होते—जो लूती के माता-पिता को उस दुर्घटना के प्रमाण के लिए यथेष्ट थे—तो सबका, विशेषकर जमींदार का, यह ख़याल होता कि शौर्य की प्रतिमा जद्दू ही लूती को हर ले गया।

× × ×

एक पक्ष बीत गया। जद्दू का कोई समाचार न मिला। इस अवधि में बघेरे ने दो आक्रमण और किये। एक बच्चे को लेकर तो वह चम्पत ही हो गया, साथ ही एक स्त्री को भी घायल कर गया। इस उत्पात से तंग आकर लोगों ने एक सप्ताह तक बघेरे के पीछे लगे रहने की ठानी। नियत समय पर जमींदार अपने वीरों के साथ मुहिम पर निकला। जमींदार का दल जैसे ही कुछ दूर गया, वैसे ही उसे एक छोटी पहाड़ी पर एक गाड़ी चरचराती हुई अपनी ओर आती दिखाई दी। गाड़ी पत्तों और शाखाओं से ऊपर तक भरी हुई थी। जमींदार के वीरों ने निस्तब्ध होकर उस ओर देखा, और वे खुशी के मारे 'अहा हा!' कहकर शोर करने लगे, क्योंकि उस गाड़ी का गाड़ीवान जद्दू था। दौड़कर लोगों ने जद्दू को

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

घेर लिया। बड़ी कठिनाई से भीड़ को पार करके, जमींदार जद्दू तक पहुँच सका। गाड़ी के भीतर एक बड़ा बघेरा मरा था। सबने खींच कर बाहर निकाला। जद्दू ने उसे मारा था क्योंकि जद्दू के निशाने के प्रतिप्रिय स्थान—हृदय—में टूटा हुआ तीर अब भी बिंधा था।

जद्दू को सरकारी इनाम मिला, क्योंकि उसने वही मनुष्यभक्षी बघेरा मारा था, जिसके लिए सरकार ने इनाम रखा था। पर लोगों को एक बड़ा आश्चर्य था, अपनी प्रेयसी के लिए—जिसकी प्राप्ति के लिए उसने सभी देवी-देवता मना डाले थे, ज़मींदार की अनुनय-विनय की थी और जिसकी विरहाग्नि में उसने अपना कलेजा जलाया था—जद्दू शोकातुर और चिन्तामग्न प्रतीत न होता था। बघेरा उसने मार ही लिया था, और यदि लूती गाँव में होती, तो बूढ़े ज़मींदार की बात को उसके पिता टालते थोड़े ही। सब काम हो जाने पर लूती जद्दू को न मिलती, तो प्रेम के उस पुराने रोगी को चैन कैसे पड़ता? ऐसी अवस्था में विरही आँसुओं के जल से प्रेमस्मृति-बेल को सींचता है, सूख कर काँटा हो जाता है; पर जद्दू के रोम-रोम से विजय-मिश्रित आनन्द स्रवित हो रहा था। उसके आनन्द में क्या रहस्य था—कुछ समझ में न आता था। शायद प्रेम के शुद्ध रूप त्याग और भक्ति की भावना उसके हृदय में जाग्रत हो गई; पर उमड़ते हुए समुद्र की भाँति चढ़ती जवानी में प्रेम की वह पवित्र दिशा—त्याग—नहीं होती। युवावस्था की तरंगें तो आसक्ति की खाड़ी की ओर ही हुँकारती हुई आती हैं। तब जद्दू के हर्ष में क्या कोई रहस्य था? शायद।

× × ×

कुछ समय पश्चात् चारों ओर खबर फैल गई कि जद्दू के गाँव के निकट जङ्गल में—उस स्थान पर, जहाँ लूती को बघेरे ने पकड़ा था—बड़ी रहस्यपूर्ण घटना घट रही है। जद्दू के मकान के निकट एक विशाल कट-हल का पेड़ था, जो इस प्रकार छाये हुये था, मानो उसने धूप से रक्षा

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

करने के लिये मकान को गोद में बैठा रखा हो। उसी वृक्ष से रात्रि के समय लूती का शब्द सुनाई पड़ता। वह अपने वीर प्रेमी का वहाँ से आह्वान करती। जद्दू भी उस शब्द को सुनकर अपनो प्यारी लूती की प्रेतात्मा के पास चला जाता। उनकी काना-फूसी, दबी हुई लजीली हँसी और कदाचित् लूती की मधुर मुसकान की आभा भी आमों के बौर से सुरक्षित और चन्द्रिका की कोमल किरणों पर आरूढ़ होकर जङ्गल के प्राणियों को मुग्ध कर लेती और गाँव के बाहर शीतल मन्द सुगन्ध समीर के झकोरों में सोने वाले स्त्री-पुरुषों से अठखेलियाँ करके उन्हें जगा देती। आश्चर्यचकित लोगों ने उस दिव्य प्रेतात्मा को देखा भी और किस वेष में ?

रुपहले डोरों—किरणों—की सुहावनी साड़ी और स्फटिक माला पहने हुए। नीरव निशा में जब समीर सुप्त प्राणियों को गुदगुदाता हुआ चारों ओर दौड़ता, तब उस समय छप्पर पर, जिसके नीचे लूती पार्थिव रूप में प्रकट हुई थी, सफेद लत्ते से लिपटा एक तीर आकर लगाता। वही लूती के माता-पीता के लिये बुलावा था। उस सिगनल के पाते ही लूती के माता-पिता उस वृक्ष के निकट जाते। पिता तो नतमस्तक, पर निस्तब्ध पेड़ के पास खड़ा रहता; किन्तु उसकी माता के कोमल हृदय में बाढ़-सी आ जाती और वह सिसक कर कह उठती 'मेरी प्यारी बेटी लूती! तू देवताओं के साथ शान्ति से रह। बेटी लूती, हमारे दोषों को क्षमा कर।"

यह सुनकर जद्दू पेड़ से कूद पड़ता और लूती के माता-पिता को गाँव लिया जाता। गांव की स्त्रियाँ, बच्चे और पुरुष—सभी इस बात को देखते! तदुपरान्त जद्दू उस पेड़ की ओर आता और लूती को पुकारता। गाँववाले लूती की प्रेतात्मा को मानवी आकार में पेड़ से उतरते देखते और उन दोनों को— जद्दू तथा उसकी प्रेतात्मा वधू को—हिरन और हिरनी के जोड़े के समान जङ्गल में जाते निहारते। फिर वे जंगल में छिटकी चांदनी में विलीयमान हो जाते।

तीन मास तक प्रत्येक शुक्ल पक्ष में यह अभिनय होता रहा। अन्त में

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

घेर लिया। बड़ी कठिनाई से भीड़ को पार करके, जमींदार जद्दू तक पहुँच सका। गाड़ी के भीतर एक बड़ा बघेरा मरा था। सबने खींच कर बाहर निकाला। जद्दू ने उसे मारा था क्योंकि जद्दू के निशाने के प्रतिप्रिय स्थान—हृदय—में टूटा हुआ तीर अब भी बिंधा था।

जद्दू को सरकारी इनाम मिला, क्योंकि उसने वही मनुष्यभक्षी बघेरा मारा था, जिसके लिए सरकार ने इनाम रखा था। पर लोगों को एक बड़ा आश्चर्य था, अपनी प्रेयसी के लिए—जिसकी प्राप्ति के लिए उसने सभी देवी-देवता मना डाले थे, जमींदार की अनुनय-विनय की थी और जिसकी बिरहाग्नि में उसने अपना कलेजा जलाया था—जद्दू शोकातुर और चिन्तामग्न प्रतीत न होता था। बघेरा उसने मार ही लिया था, और यदि लूती गाँव में होती, तो बूढ़े जमींदार की बात को उसके पिता टालते थोड़े हो। सब काम हो जाने पर लूती जद्दू को न मिलती, तो प्रेम के उस पुराने रोगी को चैन कैसे पड़ता? ऐसी अवस्था में विरही आँसुओं के जल से प्रेमस्मृति-बेल को सींचता है, सूख कर काँटा हो जाता है; पर जद्दू के रोम-रोम से विजय-मिश्रित आनन्द स्रवित हो रहा था। उसके आनन्द में क्या रहस्य था—कुछ समझ में न आता था। शायद प्रेम के शुद्ध रूप त्याग और भक्ति की भावना उसके हृदय में जाग्रत हो गई; पर उमड़ते हुए समुद्र की भाँति चढ़ती जवानी में प्रेम की वह पवित्र दिशा—त्याग—नहीं होती। युवावस्था की तरंगें तो आसक्ति की खाड़ी की ओर ही हुँकारती हुई आती हैं। तब जद्दू के हर्ष में क्या कोई रहस्य था? शायद।

× × ×

कुछ समय पश्चात् चारों ओर खबर फैल गई कि जद्दू के गाँव के निकट जङ्गल में—उस स्थान पर, जहाँ लूती को बघेरे ने पकड़ा था—बड़ी रहस्यपूर्ण घटना घट रही है। जद्दू के मकान के निकट एक विशाल कटहल का पेड़ था, जो इस प्रकार छाये हुये था, मानो उसने धूप से रक्षा

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

करने के लिये मकान को गोद में बैठा रखा हो। उसी वृक्ष से रात्रि के समय लूती का शब्द सुनाई पड़ता। वह अपने वीर प्रेमी का वहाँ से आह्वान करती। जद्दू भी उस शब्द को सुनकर अपनी प्यारी लूती की प्रेतात्मा के पास चला जाता। उनकी काना-फूसी, दबी हुई लजीली हँसी और कदाचित् लूती की मधुर मुसकान की आभा भी आमों के बौर से सुरक्षित और चन्द्रिका की कोमल किरणों पर आरूढ़ होकर जङ्गल के प्राणियों को मुग्ध कर लेती और गाँव के बाहर शीतल मन्द सुगन्ध समीर के झकोरों में सोने वाले स्त्री-पुरुषों से अटखेलियाँ करके उन्हें जगा देती। आश्चर्यचकित लोगों ने उस दिव्य प्रेतात्मा को देखा भी और किस वेष में ?

रुपहले डोरों—किरणों—की सुहावनी साड़ी और स्फटिक माला पहने हुए। नीरव निशा में जब समीर सुप्त प्राणियों को गुदगुदाता हुआ चारों ओर दौड़ता, तब उस समय छप्पर पर, जिसके नीचे लूती पार्थिव रूप में प्रकट हुई थी, सफेद लत्ते से लिपटा एक तीर आकर लगाता। वही लूती के माता-पीता के लिये बुलावा था। उस सिगनल के पाते ही लूती के माता-पिता उस वृक्ष के निकट जाते। पिता तो नतमस्तक, पर निस्तब्ध पेड़ के पास खड़ा रहता; किन्तु उसकी माता के कोमल हृदय में बाढ़-सी आ जाती और वह सिसक कर कह उठती 'मेरी प्यारी बेटी लूती! तू देवताओं के साथ शान्ति से रह। बेटी लूती, हमारे दोषों को क्षमा कर।"

यह सुनकर जद्दू पेड़ से कूद पड़ता और लूती के माता-पिता को गाँव लिया जाता। गांव की स्त्रियाँ, बच्चे और पुरुष—सभी इस बात को देखते! तदुपरान्त जद्दू उस पेड़ की ओर अाता और लूती को पुकारता। गाँववाले लूती की प्रेतात्मा को मानवी आकार में पेड़ से उतरते देखते और उन दोनों को—जद्दू तथा उसकी प्रेतात्मा वधू को—हिरन और हिरनी के जोड़े के समान जङ्गल में जाते निहारते। फिर वे जंगल में छिटकी चांदनी में विलीयमान हो जाते।

तीन मास तक प्रत्येक शुक्ल पक्ष में यह अभिनय होता रहा। अन्त में

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

लूती के दुखी माता-पिता ने अपने कृपालु जमींदार से प्रेतबाधा-निवारणार्थ याचना की। उसने उन्हें कष्ट-निवारण के लिये आसव पीने को दिया, और जद्दू तथा लूती की प्रेतात्मा का विवाह कर देने की सलाह दी। प्रेतात्मा से विवाह की तिथि निश्चित हो गई। बूढ़े जमींदार को तो विवाह में आना ही था। एक प्रकार से वह उभय पक्षों का पुरोहित था। जमींदार ने अपने एक प्रतिष्ठित अङ्गरेज मित्र को भी विवाह संस्कार में आमन्त्रित किया।

जद्दू का गाँव दो पहाड़ियों के बीच एक गजरी घाटी में था। जंगल की करधनी पहने, लगभग बीस झोपड़े ही उस गाँव में थे। अङ्गरेज के लिये आम के पेड़ के नीचे एक चारपाई बिछा दी गई। घाटी लोगों के नाच और ढोल के निनाद से गूँज रही थी। जमींदार, जो उन लोगों का वैद्य और ज्योतिषी भी था, अपने काम में लग गया। उसने शीघ्र ही एक आसव तैयार किया। मन्त्रों के प्रयोग से एक विशेष पेय बनाया गया। उस पेय का प्रभाव यह बताया गया कि लूती का सूक्ष्म शरीर पार्थिव रूप में परिवर्तित हो जायगा।

वृत्ताकार घेरे में विवाह-मंडप बना था; बीच में कुल देवता की प्रतिमा थी, उसी के समीप लकड़ी के दो मूढ़े थे। एक पर कमान और तर्कश लिये जद्दू बैठा था, और दूसरा मूढ़ा खाली था; उस पर जंगली फूल चुनकर रख दिये गये थे। जद्दू की दाईं भुजा खाली मूढ़े की ओर इस प्रकार फैली हुई थी, मानों वह किसी का आलिंगन कर रहा हो।

बूढ़े जमींदार—उस समय के पुरोहित—ने धीमे स्वर में कहा—"यह प्यारी लूती का सूक्ष्म शरीर है। जब हमारी स्त्रियाँ प्रेयसी कहीं जाती हैं, तब उनके सूक्ष्म शरीर हमारे साथ ही तो रहते हैं। सूक्ष्म शरीर एक ही समय में दो स्थानों में रह सकता है। वे लोग, जिनका मस्तिष्क अधिक विकसित होता है, और जिनकी पहुँच अन्नमय कोष से परे होती है, किसी-न-किसी रूप में अपने अनुपस्थित प्रियजनों की उपस्थिति के लिये

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

प्रार्थना किया करते हैं। जिनमें श्रद्धा और भक्ति असाधारण रूप में है, वे अपनी स्त्री अथवा प्रेयसी को साक्षात् रूप में देख सकते हैं, और उसका अनुभव पति अथवा प्रेम ही कर सकता है। प्रेम एक विचित्र शक्ति है, जिसको न तो ये पहाड़ ही और न जंगली जन्तु ही नष्ट कर सकते हैं।

चार युवक ताल-स्वर से मंडप में प्रतिष्ठित प्रतिमा दूल्हा और सूक्ष्म शरीर में विद्यमान दुलहिन के चारो ओर नाचने लगे। गाने की समाप्ति पर दुलहिन के माता-पिता फूलों की मालाएँ लेकर उठे। उन्होंने एक माला तो जद्दू के गले में डाल दी और दूसरी खाली मूढ़े पर रख दी। फिर उन्होंने हाथ जोड़कर शुभ कामना की—"महादेव! महादेव! तुम इस पाणिग्रहण के साक्षी हो।" इन शब्दों के उच्चारण होते ही बीसों स्वरों से ये ही शब्द दोहराये गये।

पौ फटी, और दुलहन के माता-पिता चले गये। मंडप के पास से दर्शकों की भीड़ भी कम होने लगी। उस संस्कार के एक विख्यात दर्शक —चन्द्रमा की मद भरी आँखें कुछ मिचने-सी लगीं, और दिवाकर की रक्त वर्ण भृकुटी का आभास हुआ। जद्दू अभी तक अपने आसन पर डटा था। सूर्य के तनिक सिर उठाने पर वह भी उठा, और प्रतिमा को साष्टांग प्रणाम कर उसने उस विशेष आसव का पान किया। खाली मूढ़े के निकट भी वह प्रणाम-स्वरूप झुका और अपनी प्यारी लूती के हारों को लेकर, उसके सूक्ष्म शरीर का आलिंगन करता हुआ चुपचाप जंगल में चला गया।

चार मास बाद उस इलाके में एक और मनुष्य-भक्षी बघेरा आया। अठारह मास के भीतर यह तीसरा बघेरा था। पहले दो मनुष्य-भक्षी बघेरों को तो जद्दू मार चुका था। अगस्त का महीना था। मूसलाधार मेह बरस रहा था। ऐसे समय में जमींदार अपने प्रतिष्ठित अङ्गरेज मित्र के पास पहुँचा, और मनुष्य-भक्षी बघेरे के शिकार में साथ चलने को

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

कहा। लगभग दस दिन से उस बघेरे का खबर मिली थी, तभी से जद्दू अनुपस्थित था, इसीलिये उसकी सहायता दुष्प्राप्य थी।

बघेरा असाधारणतया चालाक था। अपनी रक्षा के विचार से लोग पाँच-पाँच छह-छह की टोली में ही निकला करते। बघेरा धोखाधड़ी से उन पर आक्रमण किया करता। वह कभी खुले मैदान में आता, वरन् किसी आड़ से एक दम गुर्राकर दहाड़ा करता और इस प्रकार टोली को डराकर भगाया करता। ऐसी दशा में कोई न कोई भयभीत स्त्री अपनी ओढ़नी या सिर पर बाँधने का कपड़ा गिरा जाया करती। बघेरा उस कपड़े को उठा ले जाता और किसी झाड़ी के किनारे उसे छोड़ कर वहीं घात लगाकर बैठ जाता। ऐसा करने की उसकी बान पड़ गई थी, क्योंकि उसने न जाने यह कैसे मालूम कर लिया था कि कपड़े की तलाश में जंगल-निवासी स्त्रियाँ अवश्य लौटेंगी। यदि स्त्रियों को काफी सचेत कर दिया गया था, फिर भी कोई-न-कोई स्त्री इस खयाल से दो-चार घण्टे बाद जरूर लौटती कि गिरे हुए कपड़े को उठा लाने में हज ही क्या? उन्हें इस बात पर विश्वास ही न होता था कि बघेरे ने उन्हें पकड़ने के लिए वहीं जाल रच रखा है। बघेरा इस प्रकार स्त्रियों को मारा करता।

जमींदार के अँगरेज मित्र के बँगले में दस मील की दूरी पर दो नंगे पहाड़ों के बीच एक प्रसिद्ध घाटी थी, उसी में बघेरा देखा गया था। अँगरेज ने अपनी बारह नम्बर बन्दूक तो जमींदार को दे दी, और स्वयं एक बड़ी बोर की रायफल लेकर वे दोनों उस ओर चले। उनके साथ तीन आदमी और थे, जिन्हें यह बात मालूम थी कि बघेरे ने एक स्त्री के कपड़े को ले जाकर कहाँ छिपाया है। उस घाटी के मार्ग से होकर स्त्री-पुरुषों की एक टोली जा रही थी, और बघेरे ने अपने वही हथकण्डे वहाँ भी दिखाये! अकस्मात् गर्जन और गुर्राहट से घबरा कर लोग जो भागे, तो एक स्त्री की ओढ़नी गिर गई, और बघेरा उसे उठा ले गया।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

ज़मींदार और अंगरेज घाटी में खोज करके बाईं ओर को चढ़ गये। वहाँ से पानी का नाला नीचे दिखाई पड़ा। नाले के पथरीले धरातल से सटी हुई एक गुफा भी दिखाई पड़ी। गुफा के मुँह पर घनी वेलें छाई हुई थीं, और उन पर से बूँद-बूँद पानी टपक रहा था। भींगा और मिट्टी से सना एक कपड़ा भी दिखाई पड़ा। कपड़ा फैलाकर ऐसी चालाकी से रखा था कि वह एक झटके में ही वहाँ से खींचा जा सकता था। उसका एक छोर तो एक छोटी झाड़ी के ऊपर था, जो पानी के नाले की ऊँची दीवार के किनारे थीं, और दूसरा बड़ा छोर चट्टान की ढलवाँ दिवार पर फैला हुआ था। पथरीली ज़मीन होने के कारणबघेरे का खोज लेना फ़ज़ूल था; पर घाटी से नीचे नाले के मार्ग में पत्थर और कंकड़ गुफा से ऊपर को हटे हुए थे, और इस बात के प्रमाण थे कि बघेरा उसी गुफा में है।

जमींदार और अँगरेज पानी के नाले की बाईं ओर एक ऊँची चट्टान पर नाके की जगह पर बैठ गये। उनके चारों ओर आड़ भी थी। अपने साथ के तीन आदमियों को उन्होंने नीचे की घाटी के मुँह पर भेज दिया जिससे बघेरा उधर से निकलने न पाये।

ज़मींदार और अंगरेज़ एक घण्टे तक प्रतीक्षा करते रहे। इस बीच बूँदा-बाँदी की कोमल टप-टप ध्वनि होती रही; पर एकदम धीमी-सी 'उग़ा ३' की ध्वनि सुनाई पड़ी, मानो किसी ने लम्बी जम्हाई ली हो।' वही ध्वनि पर अधिक स्पष्ट—फिर सुनाई पड़ी। कहाँ से ? उसी गुफा से। सम्भवतः भयानक मनुष्यभक्षी मध्याह्न की निद्रा से जगा है और अब निकलने ही वाला है—इस ख़याल से जमींदार तथा अंगरेज और भी चौकन्ने होकर बैठ गये। किसी भी क्षण आतंकरूप वह बघेरा निकल सकता था, इसीलिये उनकी आँखें गुफा और कपड़े पर लगी हुई थीं; पर उनके विस्मय की सीमा न रही, जब उन्होंने झाड़ी के ऊपर कपड़े को हिलते देखा। उसके बाद झाड़ी की ऊपर वाली शाखाएँ

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सरसरकर हिलने लगीं, जिससे चट्टान की दीवार की ओर का कपड़ा भी फरफराने लगा। वायु में तनक भी गति न थी, इसीलिये झाड़ी का हिलना और कपड़े का फरफराना एक विस्मय के अतिरिक्त और क्या हो सकता था? थोड़ी देर उपरान्त झाड़ी के पीछे, पत्थरों के टुकड़ों पर असावधानी से रखे पैरों की आहट भी सुनाई पड़ी। इससे यह स्पष्ट था कि वहाँ पर कोई चीज़ या कोई व्यक्ति छिपा अवश्य है। जो भी हो, पर यह बात निश्चित थी कि वह जीव वहाँ पर घाटी के नीचे से बड़ी सावधानी से आया था, क्योंकि उसका आना न तो दिखाई ही पड़ा था और न उसके आने की आहट ही हुई थी।

इस बात की बड़ी आशंका थी कि कहीं उस झाड़ी के निकट वह कपड़ेवाली स्त्री चुपचाप अपना कपड़ा लेने न आई हो; पर बूढ़े ज़मींदार ने सिर हिलाकर कहा—"प्रेमपाश में फँसी स्त्री को छोड़कर और कोई स्त्री इतना विकट साहस करके मनुष्यभक्षी बघेरे की उपेक्षा नहीं कर सकती।" उसी समय कपड़ा फिर हिला, मानो जान बूझकर बघेरे को लुभाया और तरसाया जा रहा हो। उस दृश्य को देखकर ज़मींदार और अंगरेज़ चित्रवत् रह गये, और बघेरे का तो उन्हें खयाल ही न रहा। उसी आश्चर्य-मुद्रा में एक स्वप्न चित्र-सा उनके सामने खिंच गया। स्वप्नावस्था में जैसे कुत्ते की दुम बढ़कर पचासों गज़ लम्बा साँप बन जाती है, आदमी के पंख लग जाते हैं; और वह उड़ना भी महसूस करता है, ठीक उसी प्रकार जाग्रत अवस्था में झाड़ी के निकट दोनों शिकारियों को एक बहुत बड़ा बघेरा दिखाई दिया। थोड़ी देर बाद वह बघेरा निर्द्वन्द्व होकर चपटी चट्टान पर बैठ गया, और उसकी पूँछ की इधर-से-उधर होने की ध्वनि स्पष्ट सुनाई पड़ने लगी।

चौड़े कन्धे को फैलाये, बड़े सिर को ऊपर उठाये, कनौती किये हुए अविचल दृष्टि से बघेरा झाड़ी को घूर रहा था, जहाँ कपड़ा टँगा था।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

एकदम बघेरा तड़पा, मानो वह झाड़ी के दूसरी ओर वाली चीज पर आक्रमण कर रहा हो। झाड़ी के पीछे किसी आदमी या स्त्री के होने की सम्भावना से गोली चलाना भयावह था; फिर भी महाशय ने अपनी रायफ़ल उठा ली, और उसी समय 'भिजज़्' की ध्वनि हुई। दैत्य बघेरा पिछले पैरों पर पीछे को हुआ, और उसकी गर्दन में एक तीर बिंध गया।

दहलाने वाली गर्जन हुई। इतने में 'भिज्ज़्' दूसरी ध्वनि हुई और एक दूसरा तीर बघेरे के कन्धे में प्रवेश कर गया? वह प्राणघातक निशाना था। क्रोधपूर्ण गर्जन हुई और ज़मींदार तथा अङ्गरेज की ओर कुछ भगदड़ मची। एक तीसरा तीर भी उनकी ओर भन्नाता हुआ निकला, और वे ज़मीन पर लेट गये, ताकि बघेरा उनको न देख सके और उस ओर से आने वाले तीर से भी बच सकें। शीघ्र ही घाटी की दाईं ओर को, तीस-चीलीस क़दम पर किसी के गिरने का धमाका हुआ, और भयङ्कर बघेरे की मृत्यु-वेदना सुनाई पड़ने लगी। इतने में नाले के दूसरी ओर से बादल-कणों से आच्छादित तथा घटाटोप तथा वायुमण्डल को चीरती हुई आमोद भरी आवाज गूँजी—"लूती! प्यारी लूती!"

उस आवाज़ के साथ ही बाँसुरी की मीठी तान कानों में पड़ी। प्रत्युत्तर में एक बीस वर्षीया मृगनयनी युवती झाड़ी की आड़ से निकली। वह काले और लाल रंग के कपड़े से अपनी काया ढँके हुए थी। उसके भौंरे-जैसे काले, लम्बे और चमकते हुए बाल बाईं ओर को पड़े थे। छोटे-छोटे सफेद जंगली फूलों से वह विभूषित थी। इसी वेष में लूती की छबि अति कमनीय प्रतीत होती थी।

ज़मींदार पहले तो अवाक् रह गया; पर जब उसने लूती को बुलाया, तब वह उस ओर आई, और ज़मींदार के उसने पैर छुये। ज़मींदार को इस बात पर पूरा विश्वास हो गया कि लूती के सूक्ष्म शरीर ने मानव-रूप

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

धारण कर लिया है, क्योंकि जंगली कहलाने वाली जातियों को अपने देवताओं में अटल विश्वास होता है। ज़मींदार का ख़याल था कि शिवजी उस विवाह संस्कार के साक्षी थे, अतएव उन्हीं की कृपा से लूती को पुनः पार्थिव शरीर प्राप्त हो गया।

जब तक जद्दू हँसता और बाँसुरी बजाता हुआ आया, तब तक सब लोग मरे बघेरे के पास पहुँच गये थे। ज़मींदार ने अब लूती और जद्दू को आदेश दिया—"जाओ, अपने माता-पिता को प्रणाम करो, और अपने आदमियों के साथ आज रात को नाचो गाओ।"

× × ×

अङ्गरेज को लूती के पार्थिव शरीर में लौट आने की बात पर तो विश्वास न हुआ; पर उसके अदम्य साहस पर—झाड़ी के पीछे से मनुष्य-भक्षी बघेरे को ललचाने पर—वह स्तम्भित था। जद्दू ज़मींदार और अंगरेज के आने से एक घंटा बाद आया था और इस सावधानी से आया था कि ज़मींदार के खड़े किये हुए तीन सन्तरियों की उस पर नज़र तक नहीं पड़ी। लूती—जंगली जाति वालों के शब्दों में लूती की प्रेतात्मा—भी उसी समय आई होगी, यह ख्याल करके कि कहीं अँधेरा न हो जाय, उसने कपड़ा हिलाकर बघेरे को चकमा दिया था।

जद्दू ने यह बात स्वीकार की कि वह दस दिन से गैरहाजिर था, और उसी दिन प्रातःकाल आया था। उसको यह बात मालूम हो गई थी कि आतंकरूप बघेरा उस घाटी में देखा गया है।

लौटती बार अंगरेज़ ने अपने ज़मींदार मित्र से लड़की की वीरता—झाड़ी के क़रीब सरक कर आने और झाड़ी के पास छिपने, उस झाड़ी के पास, जो मनुष्यभक्षी बघेरे की गुफ़ा के पास थी—की चर्चा की। रोमांस का इससे अधिक ज्वलन्त उदाहरण और क्या होगा? ज़मींदार ने गम्भीरता से उत्तर दिया—"सूक्ष्म शरीर भयरहित होता है और यह भी मान लिया जाय कि स्वयं लूती मानवी रूप में वहाँ आकर छिप गई

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

थी, तो भी उसके लिए कोई भय की बात न थी; क्यों कि उसको अपने पति के अचूक निशाने में पूर्ण विश्वास था। स्त्रियाँ जब किसी से प्रेम करती हैं, तब उसे अपना दिल दे बैठती हैं, और ऐसा ही व्यवहार करती हैं।" अन्तिम वाक्य कहने में बूढ़े जमींदार के ओठों पर मुस्कान आ गई। उससे अँगरेज को सहमत होना पड़ा, और आश्चर्य डूबा वह अपने बँगले पर चला गया।

× × ×

एक क्लब में बैठे कई अँगरेज जङ्गली जातियों के विषय में बातचीत कर रहे थे। उनमें जमींदार का मित्र भी था। उससे एक व्यक्ति ने आसाम से कुलियों की भर्ती के लिए आये हुए एक अंगरेज प्लान्टर का परिचय कराया। बातचीत के दौरान में प्लान्टर ने कहा—"आठ-नौ महीने हुए, जद्दू नाम का एक आदमी मेरे बगीचे पर आया था। वह आपके ही जिले का था। वह अपने साथ में एक रूपवती युवती को भी लाया था। युवती को बघेरे ने कंधे पर घायल किया था। वह आदमी बड़ा ही सुदृढ़ और अचूक निशानची था। उस युवती को वह हमारे यहाँ छोड़ गया था। अस्पताल में उसका इलाज हुआ, और वह अच्छी हो गई।"

प्लान्टर और जमींदार के मित्र अँगरेज ने तारीखें मिलाईं, तो जद्दू अन्तिम बार अगस्त में आसाम के बगीचे में गया था और लूती को लिवा लाया था।

सूक्ष्म शरीर के पार्थिव शरीर में परिवर्तित होने में और उस विवाह-संस्कार और अपने जमींदार के चमत्कार पूर्ण आसव में जद्दू का उतना ही दृढ़ विश्वास था, जितना अन्य लोगों का। यदि विश्वास—अन्ध-विश्वास—की भित्ति पर उसकी सादगी और प्रीति आधारित न होती, तो साहस उसका साथ कभी न देता। यह ठीक है कि जद्दू ने लूती की प्राप्ति में अपनी सम्पूर्ण शक्तियाँ लगा दी थीं, और लूती को घायल करने वाले बघेरे को मारने के कौटुम्बिक वैर के कारण उसके हृदय में यह आशंका

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

बनी रही थी कि कहीं जमींदार का बचन भी खाली न जाय, इसलिए उसने प्रणय का नवीन मार्ग निकाला। आखिर प्रेम के पन्थ निराले ही होते हैं। जद्दू और लूती उसमें फलीभूत हुए, उसमें आश्चर्य ही क्या? वे तो बधाई के पात्र हैं, और उनकी लीला काव्यमयी है। हाँ, यह भेद अब तक नहीं खुला कि जद्दू ने उस बघेरे को, जो लूती को उठा ले गया, दस दिन बाद कैसे मारा। संसार की अनेक बातें रहस्यमयी हैं। जद्दू की वह घटना भी किसी को न मालूम हुई, तो क्या?

× × ×

लूती की आसाम जाने और आने की बात जद्दू के भाई-बन्दों को नहीं मालूम हुई, और न उस अँगरेज ने ही किसी से कही। उनकी विश्वास-सरिता समय के धरातल पर अब भी अविरत गति से बह रही है।

———

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

स्वाभिमानी नमक-हलाल

[श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक']

बहुत दौड़-धूप और चिकित्सा होने पर भी सेठ छंगामल की दशा न सुधरी। वह प्रतिदिन चिता के निकट पहुँचते जा रहे थे। वृद्ध छंगामल को भी यह भलीभाँति विदित हो गया था कि उनकी रोग-शय्या बहुत शीघ्र मृत्यु-शय्या में परिवर्तित होने वाली है। इसीलिये उन्होंने एक दिन अपने मुनीम मटरूमल को अपने पास बुलाया। उस समय मटरूमल की आयु ६० वर्ष के लगभग थी। मटरूमल के आने पर सेठ छंगामल ने उन्हें अपने पास बिठा कर कहा—"मुनीमजी, मेरा तो अब चल-चलाव लग रहा है, न-जाने किस समय दम निकल जाय। अच्छा है। मुझे संतोष है। हाथ-पैर चलते चला जाऊँ। इससे अधिक और क्या चाहिये। मुझे कोई अभिलाषा नहीं रही—संसार के सभी सुख-दुख देख चुका। कमाया भी खूब—खर्च भी खूब किया। भगवान का दिया सब कुछ है। नाती-पोतों का मुख भी देख लिया। बस, अब तो ईश्वर जितना शीघ्र इस कष्ट से छुड़ाये, अच्छा है।"

वृद्ध मुनीम के चेहरे पर शोकमय गंभीरता दौड़ गई। कुछ रुँधे हुये कंठ से उन्होंने कहा—"परमात्मा आपको अच्छा कर दे। अभी आप की उमर ही क्या है? मुझसे दो-चार बरस आप छोटे ही हैं। जब मैं हट्टा-कट्टा बैठा हूँ, तो आप का उठ खड़ा होना कौन आश्चर्य की बात है?"

सेठ छंगामल विषादमय मृदु हास्य करके बोले—"मेरा उठ खड़ा होना बिलकुल असंभव है। मृत्यु आठों पहर मेरी आँखों के सामने खड़ी रहती है; परन्तु न-जाने वह देर क्यों कर रही है?"

मटरूमल—"आप ऐसी बातें मत सोचिये, इनके सोचने से कोई

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

लाभ नहीं। अपने चित्त को प्रसन्न रखिए और यह विश्वास करिए कि आप अवश्य अच्छे हो जायँगे।"

सेठ छंगामल कुछ अप्रसन्न-से होकर बोले—"मेरी दशा इन आशाओं से कभी नहीं सुधर सकती। ये आशाएँ और विश्वास मुझे मौत के पंजे से नहीं छुड़ा सकते।"

मुनीमजी कुछ कहने ही को थे, परन्तु सेठजी ने उन्हें हाथ के इशारे से रोकर कहा—"मुनीमजो, आप मुझे बहलाने की चेष्टा मत कीजिए। अब लोकाचार का समय नहीं रहा। मैंने आप को जिस काम के लिए बुलाया है, उसे सुनिए और समझिए।"

मुनीमजी—"मुझे जो आज्ञा हो वह मैं सदैव करने के लिए——"

सेठजी—"इसके कहने की कोई आवश्यकता नहीं। आपको मेरे यहाँ रहते हुए ३० वर्ष हो चुके हैं। इतने दिनों में मुझे आपके विषय में पूरी जानकारी हासिल हो चुकी है। मुझे जितना विश्वा[illegible] है, उतना चुन्नू पर भी नहीं।"

मुनीमजी—"यह सब आप की कृपा—"

सेठजी—"कृपा नहीं, सच्ची बात है। अच्छा, जरा चुन्नू को बुलवाइए।"

मुनीमजी उठकर बाहर चले गए और दस मिनट बाद लौटे।

उनके साथ एक नवयुवक था, जिसकी आयु पच्चीस छब्बीस वर्ष के लगभग होगी। मुनीमजा तथा नवयुवक दोनों सेठजी के पलंग के पास बैठ गए।

सेठजी कुछ देर तक आँखें बंद किए पड़े रहे। तत्पश्चात् आँखें खोलकर बोले—"बेटा चुन्नू!"

नवयुवक—"हाँ पिताजी!"

सेठजी—"मैं तो अब दो ही चार दिन का मेहमान हूँ।"

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

चुन्नू—"आप भी क्या बातें किया करते हैं। आप अवश्य अच्छे हो जायँगे। कल डॉक्टर साहब कहते थे कि अभी कोई बात नहीं बिगड़ी। आप यों ही ऐसी बातें सोच-सोच कर तबियत परेशान किया करते हैं।"

सेठ जी ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया, आँखें बंद किये पड़े रहे। कुछ देर बाद उन्होंने आँखें खोलकर कहा—"खैर, जो मैं अच्छा हो गया तब तो कोई बात हो नहीं, और यदि मैं चल ही बसा——"

चुन्नू—"यह आप क्या——"

सेठ जी हाथ के इशारे से पुत्र को रोक कर बोले—"पहले मेरी सब बातें सुन लो फिर जो जी चाहे कह लेना। हाँ, तो यदि मैं चल ही बसा, तो अपने पीछे तुम्हारे लिए अपने स्थान पर मुनीमजी को छोड़ता हूँ।"

चुन्नूमल ने कुछ चौंककर मुनीमजी की ओर देखा। मुनीमजी भी कुछ घबरा-से गए।

सेठजी—"जो वेतन इन्हें अब दिया जाता है, वह सदैव दिए जाना—चाहे ये काम करें, या न करें। जब कोई बड़ा काम करना, या ऐसा काम करना जो भली भाँति तुम्हारा समझा हुआ न हो, तब पहले मुनीमजी से सलाह ले लेना और जैसा यह कहें वैसा ही करना।"

चुन्नूमल आँखें फाड़-फाड़कर मुनीमजी की ओर देखते जाते थे और पिता की बातें सुन रहे थे। मुनीमजी चुपचाप सिर झुकाये बैठे थे।

सेठजी कुछ देर दम लेने के बाद बोले—"बस तुम्हारे लिए मेरी यह अंतिम आज्ञा है। मुझे और किसी सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना। तुम स्वयं समझदार हो; जो उचित समझना, करना।"

सेठ जी ने फिर कुछ देर दम लिया। तत्पश्चात् बोले—मुनीमजी! आप से मुझे कुछ नहीं कहना। मुझे विश्वास है कि जो व्यवहार आप मेरे साथ करते आए हैं, वही चुन्नू से भी करते रहेंगे, वरन् उससे अधिक ही करेंगे। कारण, आप इसे सदैव ही अपना पुत्रवत् समझते रहे हैं।"

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

मुनीमजी ने सेठजी की बात का कोई उत्तर न दिया। सेठजी ने मुनीमजी की ओर देखा। वृद्ध मुनीम की आँखों से आँसुओं की छोटी-छोटी बूँदें निकल कर उनके झुरियां पड़े हुए गालों पर बह रही थीं। जान पड़ता है, सेठजी को उन बूँदों ही के द्वारा अपनी बात का उत्तर मिल गया; क्योंकि उन्होंने कुछ प्रसन्न मुख होकर दूसरी ओर करवट बदल ली।

—२—

सेठजी का स्वर्गवास हुए तीन महीने बीत गए। सेठ चुन्नूमल, अपने पिता के एक-मात्र पुत्र होने के कारण, सारे कारोबार के मालिक हुए। वृद्ध मुनीम मटरूमल जिस प्रकार बड़े सेठ जी का काम करते थे, उसी प्रकार छोटे सेठ चुन्नूमल का काम-काज करने लगे। कार्य-भार हाथ में लेने के पश्चात् दो महीने तक तो चुन्नूमल और मुनीमजी में खूब पटी; परन्तु फिर क्रमशः चुन्नूमल को मुनीमजी कांटे की तरह खटकने लगे। इसका कारण यह था कि चुन्नूमल नवयुवक होने के कारण संसार की गति से अनभिज्ञ थे। अतएव उलटी सीधी जो मन में आती थी, करने के लिए तैयार हो जाते थे। परन्तु, मुनीमजी यथाशक्ति उन्हें रोकते थे। चुन्नूमल मुनीमजी की बात मान तो लेते थे, पर उन्हें मुनीमजी का हस्तक्षेप करना बहुत बुरा लगता था। प्रायः मुनीमजी उन्हें डाँट भी दिया करते थे। मुनीमजी की डाँट से चुन्नूमल का गरम खून उबलने लगता था; परन्तु कुछ तो पिता के अंतिम वाक्य याद करके, और कुछ इस कारण से कि वह बाल्यावस्था से मुनीमजी के शासन में रहने के अभ्यस्त थे, उन्हें कुछ अधिक कहने-सुनने और मुनीमजी की बात को न मानने का साहस नहीं होता था।

एक दिन चुन्नूमल ने अपने कुछ मित्रों के साथ बाहर घूमने के लिए जाने की इच्छा की। उन दिनों काम का बड़ा जोर था, अतएव मुनीमजी ने कहा—"इस समय आपका बाहर जाना ठीक नहीं है।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पंद्रह-बीस दिन रुक जाइए। जब काम कुछ हलका हो, तब चले जाइएगा। मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि मैं सारे काम-काज की देख-भाल कर सकूँ। नौकरों के भरोसे इतना बड़ा काम छोड़ देना भी ठीक नहीं।"

चुन्नूमल नाक-भौं सिकोड़कर बोले—"मैं क्या नौकरों के पीछे-पीछे घूमा करता हूँ। आखिर मेरे रहने पर भी तो वे ही काम करते हैं।"

मुनीमजी—"यह ठीक है, पर मालिक के पास रहने से नौकरों को खटका रहता है और वे कोई गड़बड़ नहीं कर सकते। जब मालिक नहीं होता; तब उनको कोई डर नहीं रहता, वे मनमाना काम करते हैं।"

चुन्नूमल—'यह कुछ नहीं। मैं मित्रों से चलने का पक्का वादा कर चुका हूँ, इसलिए अवश्य जाऊँगा।"

मुनीमजी कुछ अप्रसन्न होकर बोले—"मैं आपको इस समय नहीं जाने दूँगा। मित्रों को कहने दीजिए। आदमी को अपना बनता-बिगड़ता देखना चाहिए, मित्र तो कहा ही करते हैं।"

चुन्नूमल मुनीमजी को अप्रसन्न होते देख चुप तो रहे, परन्तु उन्हें उन पर बड़ा क्रोध हो आया।

उसी दिन शाम को मित्रों से साक्षात् होने पर चुन्नूमल ने कहा—"भाई, मैं तो इस समय आप लोगों के साथ नहीं चल सकता।"

एक मित्र बोला—"क्यों?"

चुन्नूमल—मुनीमजी कहते हैं—इस समय काम अधिक है; मेरा जाना ठीक नहीं।"

दूसरा—"और तुम उस बुड्ढे खूसट की बातों में आ गए?"

चुन्नू—"क्या करूँ, अधिक कुछ कहता हूँ तो वह अप्रसन्न होते हैं।"

पहला—"अप्रसन्न होते हैं, तो होने दो। वह हैं कौन? नौकर लाख कुछ हो, फिर नौकर ही है।"

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

चुन्नू—"यह तो ठीक है, परन्तु—"

तीसरा—"यार, तुम खुद दब्बू हो, नहीं तो एक नौकर की क्या मजाल है जो मालिक पर दबाव डाले।"

दूसरा—"बात सच्ची तो यह है कि कहने को तो तुम स्वतंत्र हो गए, पर अब भी उतने ही परतंत्र हो जितने बड़े सेठजी के समय में थे। तुम कुछ बबुआ तो हो नहीं जो अपना बनता-बिगड़ता न समझो।"

तीसरा—"अरे यार, यह बुड्ढा बड़ा चलता हुआ है। यह चाहता है कि तुम इसकी मुट्ठी में रहो; जितना पानी पिलावे, उतना ही पियो।"

पहला—"सचमुच तुम्हारे लिए यह बड़ी लज्जा को बात है।"

इस प्रकार सब मित्रों ने मिलकर चुन्नूमल को ऐसा पानी पर चढ़ाया कि उन्होंने यह ठान ली कि चाहे जो कुछ हो, परंतु अब मुनीमजी के शासन में नहीं रहेंगे।

दूसरे दिन सवेरे चुन्नूमल मित्रों के साथ जाने की तैयारी करने लगे। मुनीमजी को जो इस बात का पता लगा, तो वह बड़े कुंठित हुए और चुन्नूमल से बोले—"आखिर आपने मेरा कहना न माना और जाने की तैयारी कर ही दी।"

चुन्नूमल एक तो खुद ही मुनीमजी से तंग आ गए थे, दूसरे मित्रों ने भी उन्हें खूब भर दिया था। वह मुनीमजी का तिरस्कार करने के लिए तैयार होकर बैठे थे, अतएव उन्होंने छूटते ही कहा—"आप होते कौन हैं जो आपकी बात मानूँ? मैं तो केवल इसलिए कि आप पुराने हैं, और पिताजी भी आपसे सलाह-बलाह ले लेने के लिए कह गए थे, आपका आदर करता हूँ, और आप सिर पर ही चढ़े जाते हैं। क्या आप चाहते हैं कि मैं सोलहो-आने आप ही के कहने पर चलूँ?"

मुनीमजी इस उत्तर के लिए तैयार न थे। वह चुन्नूमल के मुंह से—उस चुन्नू के मुँह से—जिसे उन्होंने गोदियों में खिलाया था,

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

जिसे उन्होंने सिखा-पढ़ाकर व्यापार-कला में दक्ष किया था—यह उत्तर सुनकर स्तंभित रह गए। उन्हें कभी स्वप्न में भी इस उत्तर की आशा न थी। बड़ी देर तक वह सन्नाटे में खड़े चुन्नूमल का मुँह ताकते और यह सोचते रहे कि आज वह दिन आ गया, जिसकी कल्पना-मात्र से उनका हृदय दहला करता था। अंत को वह सँभल-कर कुछ नम्र स्वर से बोले—"खैर आप चाहे जो समझें, और मेरी बातों का चाहे जो अर्थ लगावें, परंतु मैं जब तक यहाँ बैठा हूँ, तब तक उस काम के लिए सदैव टोकता रहूँगा, जिसे अनुचित समझता हूँ। मुझसे यह नहीं हो सकता कि चाहे बने या बिगड़े, मैं चुपचाप बैठा-बैठा देखा करूँ!

चुन्नूमल गंभीरता पूर्वक बोले—"यदि आप से नहीं देखा जाता, तो आप अपने घर बैठें।"

चुन्नूमल के इस वाक्य से मुनीम जी का रहा-सहा आशा-सूत्र भी छिन्न-भिन्न हो गया। उनके हृदय पर चोट लगी। इधर आत्मगौरव और स्वाभिमान ने भी हृदय पर दबाव डाला। उन्होंने सिर झुका-कर धीरे से कहा—'अच्छा, यदि आपकी यही इच्छा है, तो ऐसा ही होगा।"

चुन्नूमल मुनीमजी की इस बात से मन-ही-मन प्रसन्न हुए। उन्होंने समझा—"चलो अच्छा हुआ, 'आँख फूटी पीर गई'।"

—३—

मुनीमजी ने चुन्नूमल के यहाँ जाना बंद कर दिया। कुछ लोगों ने, जो मुनीमजी और चुन्नूमल दोनों के शुभचिंतक थे, मुनीमजी को समझाया कि जाने दीजिए, बच्चा है, उसकी बात का बुरा न मानिए। आप अपने स्वामी—बड़े सेठजी—की बात का स्मरण कीजिए। परंतु मुनीमजी ने इसका उत्तर दिया—"मैं केवल अपने स्वामी की बात पर, उनके पश्चात् भी, उनके घर

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

को अपना घर समझता रहा और सदैव समझता रहता। मैं चुन्नूमल की सब बातें सह सकता था, परन्तु जब उसने मुझसे साफ़-साफ़ कह दिया कि 'घर बैठो,' तब क्या रह गया? मेरा हृदय इसे स्वीकार नहीं करता कि मैं अब वहाँ जाऊँ। जौहर का परखनेवाला जौहरी मेरा स्वामी था; जब वही उठ गया, तो अब किसके पास आऊँ जाऊँ?"

लोगों ने चुन्नू को भी बहुत समझाया-बुझाया कि तुम अपने दुर्व्यवहार के लिये मुनीमजी से क्षमा माँगो, और उन्हें मना-मनूकर राज़ी करो। परन्तु, समझाने वालों की अपेक्षा भड़काने वाले अधिक थे। अतएव चुन्नूमल ने इस बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया। उन्होंने केवल इतना किया कि मुनीमजो को पेंशन के तौर पर कुछ मासिक देना चाहा; परन्तु मुनीमजी ने एक पैसा तक लेना स्वीकार न किया। उन्होंने कह दिया—"मैं कभी चुन्नूमल का नौकर नहीं रहा। जिसका नौकर था उसका था। मैं चुन्नूमल का एक पैसा भी नहीं ले सकता।"

इस प्रकार चुन्नूमल पर जो थोड़ा बहुत अंकुश था, वह भी दूर हो गया। अब चुन्नूमल पूर्ण स्वतन्त्र हो गये। स्वतन्त्र होने से विलासिता-प्रिय चून्नूमल के ख़र्च बढ़ गये। उन्होंने अपने कारोबार पर भी उचित ध्यान देना छोड़ दिया। सब काम प्रायः नोकरों ही के भरोसे पर होने लगा। साल-डेढ़ साल इसी प्रकार काम चला। उनके कारोबार की इमारत बहुत बड़ो थी और उसकी नींव कमज़ोर हो गई थी। समय के चक्र ने उलट-फेर करके स्थिति का रंग बदल दिया। चुन्नूमल की लापरवाही अंत में वह दिन ले ही आई, जिससे सेठ छंगामल का फर्म डगमगाने लगा। दो लाख की एक हुंडी का भुगतान था। चुन्नूमल को उसका स्मरण हो न था, न उसके नौकरों और मुनीमों ने ही उस पर कुछ ध्यान रक्खा। जिस समय आदमी हुंडी लेकर दूकान पर आया और उसने हुंडी का भुगतान माँगा, उस समय चुन्नूमल की

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

आँखें खुलीं । उस समय उनके पास केवल पचास हजार रुपये ही तैयार थे । इसमें संदेह नहीं कि यदि दो-चार दिन पहले उन्हें उस भुगतान का ध्यान आ जाता तो दो लाख क्या, चार-छः लाख का भुगतान भी दिया जा सकता था । परन्तु दो-चार दिन पहले तो क्या, चुन्नूमल को एक घंटा पहले तक भी उसका ध्यान न आया । अब यदि भुगतान तुरन्त नहीं दिया जाता तो फर्म दिवालिया हुआ जाता है । यह एक ऐसी बात थी जिससे चुन्नूमल जैसे लापरवाह का भी कलेजा हिल गया । उनके हाथ-पैर फूल गये, आँखों-तले अँधेरा छा गया । उन्होंने तुरन्त दो-चार जगह, जहाँ उनका व्यवहार रहता था, रुपये के लिये आदमी दौड़ाये । परन्तु डेढ़ लाख की रकम सहज में मिल जाना कोई खेल नहीं था । इसके अतिरिक्त लोग चुन्नूमल की दशा देखकर उनके फर्म से खटक गये थे । अतएव जो दे सकते थे, उन्होंने भी इनकार कर दिया । यह स्थिति देख कर चुन्नूमल ने अपने मुनीमों से परामर्श किया कि अब क्या किया जाय । इतना बड़ा फर्म दिवालिया हुआ जाता है, सेठ छंगामल की सारी कीर्ति धूल में मिली जाती है ।

उनके प्रधान मुनीम ने कहा—"हम क्या बतावें ? जैसा आप उचित समझें करें ।

चुन्नूमल रुआँसे-से होकर बोले—"तुम लोगों की लापरवाही से ही यह दिन देखना पड़ा । शोक ! यदि मटरूमल होते तो क्या ऐसी स्थिति होने पाती ? वह दस दिन पहले ही से प्रबन्ध कर रखते ।"

मुनीम—"इधर आपने भी काम की ओर बिलकुल ध्यान न रखा । हम लोग किस-किस बात का ध्यान रखें ? एक हो, दो हो, तो ध्यान रह भी सकता है ।"

इधर भुगतान लेने वाले ने कहा—"क्यों साहब, क्या देर-दार है ? हुँडी का भुगतान दीजिये ।"

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

चुन्नूमल भीतर बैठे हुये मुनोमों से झगड़ रहे थे। आदमी ने जाकर उनसे यह बात कहा।

चुन्नूमल ने आदमी से कहा--"कह दो--अभी भुगतान होता है, घबराएँ नहीं।"

आदमी को तो यह कह कर टाल दिया, और इधर मुनीम से बोले--"अब क्या किया जाय, कुछ तो बताओ ?"

मुनीम बोला--'मेरी समझ में यदि मटरूमल जी आवें, तो वह कोई-न-कोई युक्ति निकाल ही लेंगे।

चुन्नूमल को भी यह बात जँच गई। बोले--' अच्छा तो जाओ, उन्हें बुला लाओ।"

मुनीम--"मेरे या किसी और के बुलाये से तो वह कभी न आवेंगे। इस समय यदि आप ही जायँ, तो वह आ सकते हैं।"

चुन्नूमल ने सिर झुकाकर कहा--"मुझे जाना पड़ेगा ?"

यद्यपि चुन्नूमल को बहुत कुछ आशा थी कि मटरूमल के आने पर इस विपत्ति से छुटकारा होने की संभावना है, परन्तु फिर भी उनका हृदय मटरूमल के पास जाने में पीछे हटता था।

मुनीम--आप को जाना ही पड़ेगा। न जाइयेगा तो क्या दिवालिये बनियेगा ?"

चुन्नूमल--अच्छा, मैं जाता हूँ। तुम उस आदमी से कह दो कि बड़े मुनीमजी को बुलवाया है, उनके आने पर भुगतान दिया जायगा।"

यह कह कर चुन्नूमल ने उसी समय गाड़ी जुतवाई और मुनीमजी के मकान की ओर चले। रास्ते में वह सोचते जाते थे कि क्या मुँह लेकर उनके सामने जाता हूँ। क्या वह चले आवेंगे ? इसी प्रकार सोचते हुये चुन्नूमल मुनीमजी के मकान पर पहुँचे। जाड़े के दिन थे। शाम हो चुकी थी। मटरूमल दुलाई ओढ़े, बैठे हुक्का पी रहे

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

थे। उनके नौकर ने आकर कहा—"मुनीमजी, सेठ चुन्नूमल आपसे मिलने आये हैं।"

मुनीमजी चौंक पड़े। बोले—"एँ! चुन्नूमल ?"

नौकर—"जी हाँ, चुन्नूमल।"

मुनीमजी कुछ देर तक सन्नाटे में बैठे रहे। तत्पश्चात् बोले—"अच्छा; बुला लाओ।"

चुन्नूमल सकुचाते हुए मटरूमल के सामने आये, और आते ही उनके पैरों पर गिरकर रोने लगे। मटरूमल चुन्नूमल की यह दशा देख पहले बड़े आश्चर्यान्वित हुए; परन्तु साथ ही यह समझ कर कि इन पर इस समय कोई बड़ी विपत्ति आई है; इसीलिए इनकी यह दशा है, उन्होंने सप्रेम चुन्नूमल का सिर ऊपर उठाया और कहा—"क्यों बेटा, क्या बात है ? इतने घबराये हुए क्यों हो ?"

चुन्नूमल ने समस्त वृत्तान्त कह सुनाया और फिर कहा—"इस समय आप ही की सहायता से हमारी नाव इस भँवर से निकल सकती है।"

मटरूमल भी यह स्थिति सुनकर घबरा गये और बोले—"इस दशा में मैं क्या कर सकता हूँ ? मेरे यहाँ रुपया होता तो मैं उठा देता। और, जो कुछ है, वह तुम्हारा ही है। तुम्हारा उससे काम चले तो ले जाओ।"

चुन्नूमल—"मैं रुपया-उपया कुछ नहीं जानता। किसी तरह एक या दो दिन के लिये यह अवसर टाल दीजिये। फिर तो दो लाख क्या, मैं दस लाख का प्रबन्ध कर लूँगा।"

मटरूमल चुन्नूमल की दशा देख और उनकी विपत्ति का हाल सुन कर विचार करने में ऐसे मग्न हो गये कि उन्हें यह ध्यान ही न आया कि यह वही चुन्नूमल हैं; जिसने उन्हें "घर बैठने" के लिए कह दिया था।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

मटरूमल बड़ी देर तक विचार करते रहे। तत्पश्चात् बोले—"अच्छा चलो।" यह कहकर वह केवल दुलाई ओढ़े वैसे ही उठ खड़े हुए। रास्ते में चुन्नूमल मटरूमल की शांतचित्तता पर बिस्मित होकर सोचने लगे—"आखिर यह करेंगे क्या? भुगतान तो रुपये से होगा। यह वहाँ क्या करेंगे? यह तो ऐसे निश्चित हैं, मानो कोई बात ही नहीं हुई।"

इसी प्रकार सोचते हुये चुन्नूमल मटरूमल के साथ अपने यहाँ पहुँचे। मटरूमल ने गद्दी पर पहुँचते ही कहा—"भाई, मैं जल्दी में चला आया, कुछ कपड़ा भी नहीं पहना। जरा एक अँगीठो में कोयले दहका कर ले आओ। हाथ पैर ठिठुर गये।" यह कहकर वह गद्दी पर बैठ गये।

चुन्नूमल ने उनके सामने हुण्डी रक्खी और बोले—"देखिये इस हुण्डी का भुगतान करना है।"

मटरूमल बोले—"भई, जरा उँगलियाँ सीधी कर लूं तो देखूं। जाड़े के मारे उँगलियाँ तो सीधी ही नहीं होतीं।"

कुछ देर बाद दहकती हुई अँगोठी मटरूमल के सामने आई। मटरूमल कुछ देर तक उसमें हाथ सेकने के बाद बोले—"हाँ भई, अब लाओ हुण्डी, देखूँ। बुढ़ापे में शरीर की दुर्दशा हो जाती है। मेरे तो हाथ भी अब काँपने लगे।"

यह कहकर उन्होंने हुण्डी हाथ में ले ली। उसे आँखों के सामने लाये। हाथों के ठीक नीचे अँगीठी थी। अकस्मात् उनके हाथ थर्राये और हुण्डी हाथ से छूट कर अँगीठी में जा गिरी। जब तक लोगों का ध्यान उसकी ओर जाय-जाय तब तक वह जलकर राख हो गई।

भुगतान मांगने वाले के चेहरे का रंग उड़ गया। इधर चुन्नूमल का चेहरा मारे प्रसन्नता के, खिल उठा।

मटरूमल किसी के कुछ बोलने के पहले ही बोल उठे—"क्या कहूँ-

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

हाथ ऐसे काँपे कि हुण्डी सँभली ही नहीं। खैर कोई चिन्ता नहीं। (भुगतान लेनेवाले से) तुम हुण्डी की नकल लाओ और भुगतान ले जाओ। अभी ले आओ, अभी भुगतान मिल जाय।"

भुगतान लेनेवाला जल-भुनकर बोला--"नकल क्या मेरे पास धरी है। जब मँगाई जायगी, तब आवेगी। नकल मँगाने में तीन-चार दिन लग जायँगे।"

मटरूमल—"तो भाई, मैं इसे क्या करूँ। समय की बात है, हाथ काँप गया। बुड्ढा आदमी ठहरा। परन्तु इससे क्या, तुम्हारा भुगतान तो रह ही न जायगा।"

भुगतान लेनेवाला बोला—"भुगतान भला क्या रह सकता है; पर तीन-चार दिन का झमेला तो लग गया।"

मटरूमल—"अब तो लग ही गया, क्या किया जाय?"

भुगतान लेनेवाला उठ खड़ा हुआ और बोला—"अच्छा नकल आ जाने पर भुगतान ले जाऊँगा।"

यह कहकर वह चला गया।

उसके जाते ही चुन्नूमल मटरूमल के पैरों पर गिर पड़े, और बोले—"धन्य है आपको। मैंने आपको उस समय नहीं पहचाना था। इसीलिये पिताजी आपका इतना आदर करते थे और अन्त समय मुझे यह आज्ञा दे गये थे।"

अब मटरूमल को ध्यान आया कि उनके सामने वही चुन्नूमल है, जिसने उनसे घर बैठने के लिये कहा था। वह तुरन्त उठ खड़े हुये, और बोले—"यह सब ठीक है, पर मुझे तुम्हारे वे घर बैठने वाले वाक्य अभी याद हैं, अतएव मैं यहाँ एक क्षण भी नहीं ठहर सकता।"

यह कहकर और शीघ्रतापूर्वक जूता पहनकर वह वहाँ से चल खड़े हुये।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

गौरी

[श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान]

—१—

शाम को, गोधूलि की बेला, कुली के सिर पर समान रखवाये, जब बाबू राधाकृष्ण अपने घर आये, तब उनके भारी-भारी पैरों की चाल और चेहरे के भाव से ही कुन्ती ने जान लिया कि काम वहाँ भी नहीं हुआ। कुली के सिर पर से बिस्तर उतरवाकर, बाबू राधाकृष्ण ने उसे कुछ पैसे दिये। कुली सलाम करके चला गया। और वे पास ही पड़ी एक आराम कुर्सी पर, जिसके स्प्रिंग खुलकर ढीले होने के कारण कुछ इधर-उधर फैल गये थे—गिर-से पड़े। उनके इस प्रकार बैठने से स्प्रिंग आपस में टकराये, जिससे एक प्रकार की झन-झन की आवाज हुई। पास ही बैठे कुत्ते ने इधर-उधर देखा, फिर भौं-भौं करके भूँक उठा। इसी समय उनकी पत्नी कुन्ती ने कमरे में प्रवेश किया। काम की सफलता या असफलता के बारे में कुछ भी न पूछ कर कुन्ती ने नम्र स्वर से कहा—'चलो हाथ-मुँह धो लो, चाय तैयार है।'

"चाय" राधाकृष्ण चौंक पड़े—"चाय" के लिये तो मैंने नहीं कहा था।"

"नहीं कहा था तो क्या हुआ, पीलो चलकर" कुन्ती ने आग्रह-पूर्वक कहा।

"अच्छा चलो"—कहते हुये राधाकृष्ण पत्नी के पीछे-पीछे चले गये।

गौरी, अपराधिनी की भाँति, माता-पिता दोनों की दृष्टि से बचती हुई, पिता के लिये चाय तैयार कर रही थी। उसे ऐसा लग रहा था कि

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पिता की सारी कठिनाइयों की जड़ वही है। न वह होती और न पिता को उसके विवाह की चिन्ता में इस प्रकार स्थान-स्थान घूमना पड़ता। वह मुँह खोलकर किस प्रकार कह दे कि उसके विवाह के लिये इतनी अधिक परेशानी उठाने की आवश्यकता नहीं। माता-पिता चाहे जिसके साथ उसकी शादी कर दें वह सुखी रहेगी। न करें तो भी वह सुखी है। जब विवाह के लिये उसे ज़रा भी चिन्ता नहीं, तब माता-पिता इतने परेशान क्यों रहते हैं—गौरी यही न समझ पाती थी। कभी-कभी वह सोचती—क्या मैं माता-पिता को इतनी भारी हो गई हूँ ? रात-दिन सिवा विवाह के उन्हें कुछ और सूझता नहीं। तब आत्मग्लानि और क्षोभ से गौरी का रोम-रोम व्यथित हो उठता। उसे ऐसा लगता कि धरती फटे और वह समा जाय, किन्तु ऐसा कभी न हुआ।

गौरी—वह गौरी जो पूनों के चाँद की तरह बढ़ना भर जानती थी, घटने का जिसके पास कोई साधन ही नहीं था—बाबू राधाकृष्ण के लिये चिन्ता की सामग्री हो गई थी। गौरी उनकी एकमात्र सन्तान थी। उसका विवाह वे योग्य पात्र के साथ करना चाहते थे—यही सबसे बड़ी कठिनाई थी। योग्य पात्र का मूल्य चुकाने लायक उनके पास यथेष्ट सम्पत्ति न थी। यही कारण था कि गौरी का यह उन्नीसवाँ साल चल रहा था। फिर भी वे कन्या के हाथ पीले न कर सके थे। गौरी ही उनकी अकेली सन्तान थी। छुटपन से ही उसका बड़ा लाड़ प्यार हुआ था। प्रायः उसके उचित अनुचित सभी हठ पूरे हुआ करते थे। इसी कारण गौरी का स्वभाव निर्भीक, दृढ़निश्चयी और हठीला था। वह एक बार जिस बात को सोच समझ कर कह देती, फिर उस बात से उसे कोई हटा न सकता था। पिता की परेशानियों को देखते हुये अनेक बार उसके जी में आया कि वह पिता से साफ़-साफ़ पूछे कि 'आखिर वे उसके विवाह के लिये इतने चिन्तित क्यों हैं! वह स्वयं तो विवाह को इतना आवश्यक नहीं समझती। और अगर पिता विवाह को इतना महत्व देते

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

हैं, तो फिर पात्र और कुपात्र क्या ? विवाह करना है कर दें, किसी के भी साथ, वह हर हालत में सुखी और सन्तुष्ट रहेगी। उनकी इतनी परेशानी और चिन्ता अब उससे नहीं सही जाती।' किन्तु संकोच और लज्जा उसकी ज़बान पर ताला-सा डाल देते। हज़ार बार निश्चय करके भी वह पिता से यह बात न कह सकी।

पिता को आते देख गौरी चुपके-से दूसरे कमरे में चली गई। राधाकृष्ण बाबू ने जैसे बे-मन से हाथ-मुँह धोया और पास ही रखी एक कुर्सी पर बैठ गये। वहीं एक मेज़ पर कुन्ती ने चाय और नमकीन पूरियाँ पति के सामने रख दीं। पूरियों की तरफ राधाकृष्ण ने देखा भी नहीं। चाय का प्याला उठाकर पीने लगे। कुन्ती ने डरते-डरते पूछा (ऐसी कन्या को जन्म देकर जिसके लिए वर ही न मिलता, कुन्ती स्वयं ही जैसे अपराधिनी हो रही थी)—

"जहाँ गये थे क्या वहाँ भी कुछ ठीक नहीं हुआ ?" "ठीक ! ठीक होने को वहाँ धरा ही क्या है ?"—चाय का घूंट गले से नीचे उतारते हुये बाबू राधाकृष्ण ने कहा—"सब हमी लोगों पर है। विवाह करना चाहें तो सब ठीक है, न करना चाहें तो कुछ भी ठीक नहीं है।"

कुन्ती ने उत्सुकता से पूछा—"फिर क्या बात है ? लड़के को देखा !"

राधाकृष्ण—"हाँ देखा, अच्छी तरह देखा ! हुंः !" राधाकृष्ण फिर चाय पीने लगे। कुन्ती की समझ में यह पहेली न आयी, उसने कहा—"ज़रा समझा कर कहो, तुम्हारी बात तो समझ में नहीं आती।"

राधाकृष्ण—"समझा कर कहता हूँ, सुनो। वह लड़का—लड़का नहीं आदमी, तुम्हारी गौरी के साथ मामूली चपरासी की तरह दिखेगा। बोलो करोगी ब्याह ?"

कुन्ती—"विवाह की बात तो पीछे होगी। क्या रूप-रंग बहुत खराब है ? फोटो में तो वैसा नहीं जान पड़ता।"

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

राधाकृष्ण—"रूप-रंग नहीं, रहन-सहन बहुत खराब है। इतनी सिधाई भी तो अच्छी नहीं होती, जिसके पीछे आदमी आदमी न दिखे। और फिर उमर भी तो अधिक है—३५-३६ साल। साथ ही दो बच्चे भी हैं। उन्हीं बच्चों को सँभालने के लिये तो वे विवाह करना चाहते हैं। नहीं तो शायद न करते। उनकी दूसरी शादी है! उनकी उमंगे, उनका उत्साह सब ठंडा पड़ गयी है। वे अपने बच्चों के लिये एक धाय चाहते हैं। पर मेरी लड़की की तो दूसरी शादी नहीं है। और फिर वह साफ-साफ कहते हैं कि मैं केवल बच्चों के लिये विवाह करना चाहता हूँ।"

कुन्ती ने कहा—"जिन्हें दूसरी शादी करनी होती है वे सब बच्चों ही के बहाने तो शादी करते हैं, नहीं तो यह कहें कि अपने लिये करते हैं?"

राधाकृष्ण—'अरे नहीं-नहीं, वह आदमी कपटी नहीं है। उसके भीतर कुछ और बाहर कुछ हो ही नहीं सकता। हृदय तो उसका दर्पण की तरह साफ है। पर उसका खादी का कुरता गांधी टोपी, फटे-फटे चप्पल देखकर जो हिचकता है—वह कहीं नेता बन कर व्याख्यान देने लायक है, पर किसी के घर दूल्हा बनकर जाने लायक नहीं है। इसके अलावा ३०) कुल उनकी तनख्वाह है। कांग्रेस-दफ्तर में सेक्रेटरी का काम करते हैं। तीन बार जेल जा चुके हैं। किस दिन चले जाते हैं, कुछ ठिकाना नहीं'।

कुन्ती—"आदमी तो बुरा नहीं जान पड़ता।"

राधाकृष्ण—"बुरा आदमी तो मैं भी नहीं कहता इसे, पर वह गौरी का पति होने लायक नहीं है। सच बात यह है!"

कुन्ती—"फिर तुमने क्या कह दिया।"

राधाकृष्ण—"क्या कह देता? उन्हें बुला आया हूँ! अगले इतवार को आवेंगे, जिसमें तुम भी उन्हें देख लो! और वह आने के लिये भी तो बड़ी मुश्किल से तैयार हुए। कहने लगे—"नहीं साहब!

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

मैं लड़की देखने न जाऊँगा। इस तरह लड़की देख कर मुझसे किसी का अपमान नहीं किया जाता।" फिर जब मैंने उन्हें समझा कर कहा कि आप लड़की को न देखें, लड़की और उसकी माँ आपको देख लेंगी, तब कहीं बड़ी मुश्किल से राजी हुए।"

गौरी दरवाजे की आड़ से सब बातें सुन रही थी। जिस व्यक्ति के प्रति उसके पिता इतने असंतुष्ट और उदासीन थे, उसके प्रति गौरी के हृदय में अनजाने ही में कुछ श्रद्धा के भाव जाग्रत हो गए। राधाकृष्ण बाबू पान का बीड़ा उठाकर अपनी बैठक में चले गये। और उसी रात फिर उन्होंने अपने कुछ मित्रों और रिश्तेदारों को गौरी के लिए योग्य वर तलाशने को पत्र लिखे।

—२—

अगला इतवार आया। आज ही बाबू सीताराम जी, गौरी को देखने या अपने आप को दिखाने आवेंगे। बाबू राधाकृष्ण जी ने यह पहले से ही कह रखा है कि किसी बाहर वाले को कुछ न मालूम पड़े कि कोई गौरी को देखने आया है। अतएव यह बात कुछ गुप्त रखी गयी है। घर के भीतरी आँगन में ही उनके बैठने का प्रबन्ध किया गया है। तीन कुर्सियों के बीच में एक मेज है, जिस पर एक साफ धुला हुआ खादी का कपड़ा बिछा दिया गया है और एक गिलास में आँगन के ही गुलाब के कुछ फूलों को तोड़ कर, गुलदस्ते का स्वरूप दिया गया है। बहुत ही साधारण-सा आयोजन है। सीताराम जी सरीखे व्यक्ति के लिये किसी विशेष आडम्बर की आवश्यकता भी तो न थी।

यथा समय बाबू सीताराम जी अपने बच्चों के साथ आये। बच्चे भी वही खादी के कुरते और हाफपैण्ट पहने थे। न जूता, न मोजा, न किसी प्रकार का ठाट-बाट। वे दोनों बड़े प्रसन्न, बड़े हँस-मुख, आकर घर में वे इस प्रकार खेलने लगे, जैसे इस घर से वे चिर-परिचित हों। कुन्ती एक तरफ बैठी थी। बच्चों के कोलाहल से परिपूर्ण घर

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

उसे क्षण भर के लिये नन्दन कानन-सा जान पड़ा। उसने मन ही मन सोचा—'कितने अच्छे बच्चे हैं। यदि बिना किसो प्रकार का सम्बन्ध हुए भी सीताराम जी इन बच्चों के सम्भालने का भार उसे सौंपें तो वह खुशो-खुशी ले ले। वह बच्चों के खेल में इतनी तन्मय हो गई कि क्षण भर के लिए भूल गई कि सीताराम जी भो बैठे हैं। उनसे भी कुछ बात करनी है। इसी समय अचानक छोटे बच्चे को जैसे कुछ याद आ गया हो। दौड़कर पिता के पास आया। उनके पैरों के बीच में खड़ा होकर बोला "बाबूजी तुम तो कैते थे न कि माँ को दिकाने ले चलते हैं। माँ कआँ है, बतलाओ?"

बाबू ने किंचित हँसकर कहा—"ये माँजी बेठो हैं; इनसे कहो, यही तुम्हें दिखायेंगी।"

बालक ने मचलकर कहा—"ऊँ हूँ तुम दिकाओ।" और इसी समय एक बड़ी सी सफेद बिल्ली आँगन से होती हुई भीतर भाग गयी। बच्चे बिल्ली के पीछे सब कुछ भूलकर, दौड़ते हुए अन्दर पहुँच गये। गौरी पिछले बरामदे में चुपचाप खड़ी थी। वह न जाने किस ध्यान में थी। तब तक छोटे बच्चे ने उसका आँचल पकड़कर खींचते हुए पूछा—"क्या तुम अमारी माँ हो?" गौरी ने देखा हृष्ट-पुष्ट सुन्दर सा बालक कितना भोला कितना निश्छल। उसने बालक को गोद में उठाकर कहा, "हाँ।" बच्चे ने फिर उसी स्वर में पूछा—'अमारे घर चलोगी न? बाबू तो तुम्हें लेने आये हैं ओल हम भी आये हैं।" अब तो गौरी उनकी बातों का उत्तर न दे सकी। पूछा "मिठाई खाओगे", "हाँ खायँगे"—दोनों ने एक ही साथ एक स्वर से उत्तर दिया। कुछ ही क्षण बाद कुन्ती ने अन्दर आकर देखा कि छोटा बच्चा गौरी की गोद में और बड़ा उसो के पास बैठा मिठाई खा रहा है। एक निःश्वास के साथ कुन्ती बाहर चलो गई और थोड़ी देर बाद ज्योंही गौरी ने ऊपर आँख उठाई, उसने माता-पिता दोनों को सामने खड़ा पाया। पिता ने

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

स्नेह के स्वर में पुत्री से कहा—"बेटा जरा बाहर चलो, चलती हो न ?" गौरी ने कोई उत्तर न दिया। उसने बच्चों का हाथ मुँह धुलाया, उन्हें पानी पिलाया, फिर माँ के पीछे-पीछे बाहर चली गई। बच्चे अब उसी को घेरे थे। वे उसे छोड़ना ही न चाहते थे। बड़ी मुश्किल से सीताराम जी उन्हें बुलाकर कुछ देर तक अपने पास बिठा सके, किन्तु जरा सा मौका पाते ही वे फिर जाकर गौरी के आसपास बैठ गए। पिता के विरुद्ध उन्हें नालिशें भी दायर करनी थीं, पिता के पास बैठ कर न कर सकते।

छोटे ने कहा—"बाबू हमें कभी खिलौने नहीं ले देते।'

बड़े ने कहा—'मिठाई भी तो कभी नहीं खिलाते।'

छोटा बोला—औल अमें छोलकर दफ्तर जाते हैं। दिन भर नहीं आते, बाबू अच्छे नहीं हैं।

बड़ा बोला—'माँ तुम चलो, नहीं तो हम भी यहीं रहेंगे।' बच्चों की बातों से सभी को हँसी आ रही थी।

कुन्ती ने बच्चों से कहा—'तो तुम दोनों भाई यहीं रह जाओ, बाबू को जाने दो, है न ठीक।'

काफी देर हो गई यह देखकर सीताराम जी ने कहा—'समय बहुत हो चुका है, अब चलूँगा, नहीं तो शाम की ट्रेन न मिल सकेगी। फिर राधाकृष्ण की तरफ देखकर कहा—'आप लोगों से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। लड़की तो आप की साक्षात् लक्ष्मी है। और मैं यह जानता था कि आप की लड़की ऐसी ही होगी, इसीलिए देखने को नहीं आना चाहता था। फिर कुछ ठहर कर बोले—'और सच बात तो यह है कि मुझे पत्नी की उतनी जरूरत नहीं, जितनी इन बच्चों को जरूरत है, एक माँ की। मेरा क्या ठिकाना ? आज बाहर हूँ तो कल जेल में। मेरे बाद इनकी देख-रेख करनेवाला कोई नहीं रहता।' यही सोच समझकर विवाह

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

करने को तैयार हो सका हूँ। अन्यथा इस उमर में विवाह ?... अतएव स्वयं हँस पड़े।

राधाकृष्ण ने मन ही मन सोचा—'तो मेरी लड़की इनके बच्चों की धाय बनकर जायगी।' कुन्ती ने सोचा—'कोई भी स्त्री ऐसे बच्चों का लालन-पालन कर अपना जीवन सार्थक बना सकती है।' गौरी ने मन-ही-मन इस महापुरुष के चरणों में प्रणाम किया और बच्चों की ओर ममता भरी दृष्टि से देखा। यह दृष्टि कह रही थी कि किसी विलासी युवक की पत्नी बनने से अधिक मैं इन भोले-भोले बच्चों की माँ बनना पसन्द करूँगी। सीतारामजी को जाने के लिए प्रस्तुत देख बच्चे फिर गौरी से लिपट गये। यदि राधाकृष्ण झूठ ही सही, एक बार भी कहते कि बच्चों को छोड़ जाओ तो सीताराम जी बच्चों को छोड़ कर चले जाते। परन्तु इस ओर से जब ऐसी कोई बात न हुई तो बच्चों को सिनेमा, सरकस और मिठाई का प्रलोभन देकर बड़ी कठिनाई से गौरी से अलग करके वे ले जा सके। जाते समय सीतारामजी को पक्का विश्वास था कि विवाह होगा, केवल तारीख निश्चित भर करने की देर है।

—३—

सीतारामजी उस पत्र की प्रतीक्षा में थे जिसमें विवाह की निश्चित तारीख लिखकर आनेवाली थी। देश की परिस्थिति, गवर्नमेण्ट का रुख और महात्माजी के वक्तव्यों को पढ़ कर, वे जानते थे कि निकट भविष्य में फिर सत्याग्रह संग्राम छिड़नेवाला है। न जाने किस दिन उन्हें फिर जेल का मेहमान बनना पड़े। पिछली बार जब गये थे तब उनकी बूढ़ी बूआ थीं, पर अब तो वे भी नहीं रहीं। यह कहारिन क्या बच्चों की देख भाल कर सकेगी ? बच्चों की उन्हें बड़ी चिन्ता थी। और बच्चे भी सदा ही माँ-माँ की रट लगाये रहते थे। उन्होंने फिर एक पत्र बाबू राधाकृष्ण को शीघ्र ही तारीख निश्चित करने के लिये लिख भेजा। उधर राधाकृष्णजी दूसरी ही बात तै कर रहे थे। उन्होंने

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

स्नेह के स्व के पत्र के उत्तर में लिख भेजा कि गौरी की माँ पुराने ख्याल की हैं वे बिना जन्मपत्री मिलाये, विवाह नहीं करना चाहतीं, अतएव आप अपनी जन्मपत्री भेज दें। पत्र पढ़ने के साथ ही सीताराम जी को यह समझते देर न लगी कि यह विवाह न करने का केवल बहाना मात्र है। किन्तु फिर भी उन्होंने जन्म-पत्री भेज दी। जन्म-पत्री भेजने के कुछ ही दिन बाद उत्तर भी आ गया कि जन्म-पत्री नहीं मिलती, इसलिये विवाह न हो सकेगा। क्षमा कीजियेगा।

बाबू राधाकृष्ण को गौरी के लिए दूसरा वर मिल गया था, जो उनकी समझ में गौरी के बहुत योग्य था। धनवान ये भी अधिक न थे। पर अभी-अभी नायब तहसीलदारी पद पर नियुक्त हुए थे। आगे और भी उन्नति की आशा थी। बी० ए० पास थे। देखने में अधिक सुन्दर न थे! बदशकल भी कहे जा सकते थे। पर पुरुषों की कहीं सुन्दरता देखी जाती है। उमर कुछ अधिक न थी, यही २४, २५ साल। लेन-देन का कुछ झगड़ा यहाँ भी न था। पहली शादी थी और माँ-बाप, भाई-बहन से भरा-पूरा परिवार था। राधाकृष्ण इससे अधिक चाहते ही क्या थे। ईश्वर को उन्होंने कोटिशः धन्यवाद दिया, जिसकी कृपा से ऐसा अच्छा वर उन्हें गौरी के लिये मिल गया।

विवाह आगामी आषाढ़ में होना निश्चित हुआ। दोनों तरफ से विवाह की तैयारी हो रही थी। वे बड़ी तन्मयता के साथ गहने-कपड़ों का चुनाव करते थे। सोचते थे—देर में शादी हुई तो क्या हुआ? वर भी तो कितना अच्छा ढूँढ़ निकाला है। कुन्ती भी बहुत खुश थी। उसकी आँखों में वह दृश्य झूलने लगता था कि उसका दमाद छोटा साहब हो गया है। बेटी दमाद छोटे-छोटे बच्चों के साथ उससे मिलने आये हैं। किन्तु बच्चों की बात सोचते ही उसे सीताराम जी के दोनों बच्चे तुरन्त याद आ जाते और आ जाती उनकी बात। बच्चों की देख-रेख करने वाला कोई नहीं है। फिर वह सोचती, उन्हें

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

दुनियाँ में और भी तो लड़कियाँ हैं। कर ले शादी, क्या [illegible] गौरी ही है। इस प्रकार पति-पत्नी दोनों ही प्रसन्न थे। पर गौरी से कौन पूछता कि उसके हृदय में कैसी हलचल मची रहती है। रह-रहकर उसे उन बच्चों का भोला-भाला मुँह और खोठी-मीठी बोल याद आ जाती और साथ ही याद आ जाती विनयी, नम्र और सादगी की प्रतिमा, सीताराम जी। उनकी याद आते ही श्रद्धा से गौरी का माथा अपने आप ही झुक जाता। देश-भक्त त्यागी वीरों के लिये उसके हृदय में बड़ा सम्मान था। सीताराम जी ने भी तो देश के लिये अपने जीवन का उत्सर्ग कर दिया है। नहीं तो बी० ए० पास करने के बाद क्या प्रयत्न करने पर उन्हें नायब तहसीलदारी न मिल जाती? मिलती क्या नहीं? पर सीताराम जी सरकार की गुलामी पसन्द करते तब न! दूसरी ओर थे उसके होनेवाले पति नायब तहसीलदार साहब, जिन्हें अपने आराम, अपने देश के लिये, ब्रिटिश गवर्नमेंट के जरा से इंगित मात्र पर निरीह देशवासियों के गलेपर छुरी फेरने में जरा भी संकोच या हिचक नहीं। जिनके सामने कुछ चाँदी के टुकड़े फेंक दिये जाते हैं। और वह दुम हिलाते हुए निंद्य से निंद्य कर्म करने में भी किञ्चित लज्जित नहीं होते। घृणा से गौरी का जी भर जाता। किन्तु उसके इन मनोभावों का जाननेवाला यहाँ कोई भी न था। वह रात-दिन एक प्रकार की अव्यक्त पीड़ा से विकल-सी रहती। बहुत चाहती थी कि अपनी माँ से कह दे कि वह नायब तहसीलदार से शादी न करेगी, किन्तु लज्जा उसे कुछ न कहने देती। ज्यों-ज्यों विवाह की तिथि नज्दीक आती, गौरी की चिन्ता बढ़ती जाती थी।

विवाह की निश्चित तारीख से १५ दिन पहले एक दिन तार आया कि नायब तहसीलदार साहब के पिता का देहान्त हो गया। इसी मृत्यु के कारण विवाह साल भर को टल गया। गौरी के माता-पिता

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

स्नेहदुःखद्गुये, किन्तु गौरी के सिर पर से जैसे चिन्ता का पहाड़-सा हट गया।

—४—

इसी बीच सत्याग्रह आन्दोलन की लहर सारे देश भर में बड़ी तीव्र गति से फैल गई। शहर-शहर में गिरफ्तारियों का तांता-सा लग गया। रोज ही न जाने कितने गिरफ्तार होते, कितनों की सजा होती। कहीं लाठीचार्ज, कहीं १४४। सरकार की दमन की चक्की बड़े भयंकर रूप से चल रही थी। गौरी को चिन्ता थी उन बच्चों की। जब से सत्याग्रह संग्राम छिड़ा था; तभी से उसे फिकर थी कि न जाने कब सीताराम जी गिरफ्तार हो जायँ। और फिर वे बच्चे बिचारे, उन्हें कौन देखेगा? रोज का अखबार ध्यान से पढ़ती और कानपुर का समाचार तो और ध्यान से देखती थी। और इसी प्रकार एक दिन उसने पढ़ा कि राजद्रोह के अपराध में सीताराम जी गिरफ्तार हो गये। और उन्हें एक साल का सपरिश्रम कारावास हुआ। इसी समाचार को पढ़कर गौरी कुछ क्षण तक स्तब्ध-सी खड़ी रही। फिर कुछ सोचती हुई टहलने लगी। कुछ ही देर बाद उसनें अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया। वह माँ के पास गई। माँ कोई पुस्तक देख रही थी। उसने अपने सारे साहस को समेटकर दृढ़ता से कहा—"माँ, मैं कानपुर जाऊँगी।"

"कानपुर में क्या है"? आश्चर्य-से कुन्ती ने पूछा।

गौरी—"वहाँ बच्चे हैं।"

माँ ने उसी स्वर में कहा—"बच्चे? किसके बच्चे? कैसी बातें करती है गौरी; पागलों की-सी।"

गौरी—"नहीं माँ, मैं पागल नहीं हूँ। बच्चों को तुम भी जानती हो उनके पिता को राजद्रोह के मामले में साल भर की सजा हो गई है। बच्चे छोटे हैं। मैं जाऊँगी माँ। मुझे जाना ही पड़ेगा।"

गौरी के स्वभाव से कुन्ती भलीभाँति परिचित थी वह जानती थी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

कि गौरी जिस बात की हठ पकड़ती है, कभी छोड़ती नहीं। अतएव सहसा वह गौरी का विरोध न कर सकी, बोली—"पर तेरे बाबूजी तो बाहर गये हैं। उन्हें तो आ जाने दो।"

पर गौरी ने दृढ़ता के साथ कहा—"बाबूजी के आने तक नहीं ठहर सकूँगी माँ। मुझे जाने दो। रास्ते में मुझे कुछ कष्ट न होगा। अब मैं काफ़ी बड़ी हो गयी हूँ।

और उसी दिन शाम को एक नौकर के साथ गौरी कानपुर चली गई।

साल भर बाद--

अपनी सज़ा पूरी करके सीताराम जी घर लौटे। इस साल भर के भीतर उन्होंने एक बार भी बच्चों को न देखा था। उन्हें क़ायदे के अनुसार हर महीने उनका कुशल समाचार मिल जाता था। पर लगातार उन्हें बच्चों की चिन्ता बनी रहती थी। जिस कहारिन के भरोसे वे बच्चों को छोड़ गये थे, उसके तीन-चार बच्चे थे। वह बच्चे को कैसे रखेगी सो सीताराम जी जानते थे। पर विवशता थी क्या करते। सबेरे-सबेरे ६ बजे ही जेल से मुक्त कर दिए गए। एक ताँगे पर बैठकर वे घर की ओर चले। जेब में कुछ पैसे थे। एक जगह गरम-गरम जलेबियाँ बन रही थीं। बच्चों के लिए थोड़ी-सी खरीद लीं। घर के दरवाजे पर पहुँचे। दरवाजा खुला था। पर घर के अन्दर पैर रखने में हृदय धड़कता था, न जाने बच्चे किस हालत में हों। वे चोरों की तरह चुपके-चुपके घर में घुसे। परन्तु यह क्या। आँगन में पहुँचते ही वे ठगे-से खड़े रह गये। फिर ज़रा आगे बढ़कर उन्होंने कहा--आप ? और गौरी ने झुककर उनकी पदधूलि माथे से लगा ली।

———

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

मिलन-मुहूर्त

[श्री गोविन्दवल्लभ पन्त]

—१—

वासवदत्ता का सौन्दर्य पूर्ण चन्द्रमा से भी अधिक पूर्ण था। उसकी देह कमल से भी अधिक कोमल थी। उसकी वाणी वीणा का तिरस्कार करती थी। उसकी लाज-भरी आँखें हरिणी को लजा सकती थीं। स्वर्ग के सौन्दर्य्य ने अपनी रुचि के अनुसार, अपने ही कोमल हाथों से उस सजीव स्वर्ण-प्रतिमा को निर्मित किया था। ऐसी भुवनमोहिनी शोभा, ऐसी रुचिर रूप-राशि देकर भी क्या विधाता को उसे वेश्या बनाना उचित था? कीचड़ में कमल और काँटों में फूल खिलाने वाला ही जाने।

उस दिन बाल-वसंत के सुषमापूर्ण प्रभात में जब कोयल के करुण गान को छाती से लगाए मलय-सुरभि अपने मन से बह रही थी, एक श्रमण वासवदत्ता की सुविशाल अट्टालिका के द्वार पर भिक्षा के लिए आ खड़ा हुआ। अचानक वासवदत्ता की दृष्टि उस बौद्ध भिक्षु के ऊपर पड़ी। उसने उसे एक बार देखा; सौ बार देखा—देखती रही।

उसका नाम उपगुप्त था। सांसारिक दृष्टि से वह भिखारी था, किंतु स्वर्गीय दृष्टि से वही राजराजेश्वर था। मन से बढ़कर श्रेष्ठ और सुविस्तृत राज्य कोई नहीं है। उपगुप्त ने अपने उसी मन के ऊपर विजय प्राप्त की थी। वह राजराजेश्वर था, समस्त इन्द्रियाँ उसकी प्रजा थीं।

विश्व की चञ्चलता और अशान्ति का उसे पूरा पता था, उसकी आँखें अचंचल और शान्त थीं। स्वर्गीय दिव्य आभा से उसका मुख-मंडल भासमान था। काषाय वस्त्र उसे अपूर्व शोभा प्रदान कर रहे थे।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

संसार को अपने सौन्दर्य्य से पराजित करने वाली [illegible] उस भिक्षु के समीप हार गई, उसके सौन्दर्य्य पर मुग्ध हो गई। उसका कौषेय अंचल खिसक पड़ा, कबरी शिथिल हो गई, उसमें ग्रथित पुष्पराशि मुक्त होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी!

उसने उपगुप्त के समीप आकर कहा—"भिक्षु, भिक्षा-पात्र आगे बढ़ाओ।"

भिक्षा-पात्र आगे बढ़ा कर हठात् उपगुप्त ने आश्चर्य से कहा—"किन्तु तुम्हारे दोनों हाथ रिक्त हैं, यह मुझे क्या दे सकेंगे?"

वासवदत्ता—"यह तुम्हें वह वस्तु देंगे, जो तुम्हें इस संसार में कहीं नहीं मिली, तथा जो इन हाथों ने आज तक किसी और को प्रदान नहीं की?"

उपगुप्त—"अर्थात्?"

वासवदत्ता—"ये हाथ रिक्त नहीं हैं!"

उपगुप्त—"मैं इन स्वर्णाभूषणों से क्या करूँगा!"

वासवदत्ता—"मैं इन स्वर्णाभूषणों की बात नहीं कहती। अबोध युवक! ये हाथ रिक्त नहीं हैं। ये प्रेम आलिंगन से परिपूर्ण हैं। मैं वही आलिंगन तुम्हें दूँगी। कल्पना करो भिक्षु, जिस वासवदत्ता की छाया-स्पर्श के लिए बड़े-बड़े राजराजेश्वर व्याकुल रहते हैं, वह तुम्हें प्रेम का आलिंगन देगी।"

उपगुप्त के मुख के भावों में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। वासवदत्ता ने फिर कहा—"भिक्षा-पात्र आगे बढ़ाओ। मैं तुम्हें भिक्षा में अपना हृदय दूँगी।"

उपगुप्त ने पूछा—"इसका अर्थ?"

वासवदत्ता—"इसका अर्थ यही है कि, यह तुम्हारी सुकुमार देह भिक्षा-वृत्ति के लिए नहीं है। यह अनुपम सौन्दर्य्य-सुमन संसार के स्पर्श

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

से दू... पथ में मुरझाने के लिए नहीं है। आओ भिक्षु, मेरे सदन में आओ। मैं विश्व की स्वामिनी हूँ, तुम्हारी दासी बनूँगी।

उपगुप्त के वासना के प्रभाव से मुक्त मुख-मण्डल में हँसी की एक क्षीण रेखा दिखाई दी। वह चुप रहा।

वासवदत्ता ने विकल होकर कहा—"उत्तर दो भिक्षु।"

उपगुप्त ने उत्तर दिया "किन्तु कई कारणों से अभी समय नहीं है।"

वासवदत्ता—"तो कब?"

उपगुप्त—"फिर कुछ दिन बाद आऊँगा।"

"फिर कुछ दिन बाद आऊँगा," वासवदत्ता मन-ही-मन सोचने लगी—"रमणी के रूप का यह अपमान! एक सामान्य भिक्षु उसके सौन्दर्य्य का तिरस्कार कर सका! देखा जायगा। मैं उस दिन की प्रतीक्षा करूँगी।"

उपगुप्त द्रुत गति से सङ्घ की ओर चला गया। वासवदत्ता सुवर्ण मूर्ति की तरह उसे नीरव-निश्चल होकर देखती रही।

—२—

अपने छोटे से जीवन की एक झलक दिखाकर सन्ध्या तीव्र गति से चली गई थी। शारदीय शुभ्राकाश की प्राची में उदयोन्मुख चन्द्रमा की किरणें रूपोज्वल चाँदनी बिछा रही थीं!

एक सघन वन के चरणों को धोती हुई कलरव-रव-रता गंगा बह रही थी। दिन भर के भिक्षा-भार से युक्त उपगुप्त उस वन से होकर अपने मठ को लौट रहा था।

उस भयंकर हिंस्र पशु, सिंह के ऊपर करुणा के अवतार भगवान् बुद्ध के उपदेश का कुछ भी असर नहीं हुआ। उसकी राक्षसी प्रवृत्ति परिवर्तित नहीं हुई। उपगुप्त को आते देख कर सिंह बड़े वेग से उसके

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

ऊपर झपटने को तैयार हुआ। भिक्षु ने यह देखकर अपना मस्तक झुका दिया।

एक ओर सिंह उपगुप्त को भक्षण करने के लिए तैयार है, दूसरी ओर उपगुप्त सिंह के लिए भोजन बन कर खड़ा है!

पास ही एक घनी झाड़ी थी, घनी झाड़ी के हृदय में एक छिद्र था। वसन्त की पूर्ण प्रफुलता में यथा-शक्ति प्रयास करने से भी पत्तियाँ उसे भर नहीं सकी थीं! उस छिद्र से एक व्याध ने वह भयानक दृश्य देख लिया।

ज्योंही सिंह भिक्षु के ऊपर झपटने को हुआ, त्योंही व्याध ने अपने धनुष में तीर चढ़ा लिया और सामने की झाड़ी का वक्ष विदीर्ण कर, सिंह को धराशायी कर दिया।

उपगुप्त ने चकित होकर चारों ओर देखा। अपने कार्य्य की सफलता पर मुस्कराता हुआ धनुषधारी व्याव उसकी ओर आ रहा था।

भिक्षु ने दुःखभरे शब्दों में व्याध से, कहा—"हाय! तुमने यह क्या किया? सिंह ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था? अकारण निरपराध की हत्या क्यों की?"

व्याध ने मन-ही-मन सोचा—"सिंह और निरपराध?"

अपने दयाहीन कठोर जीवन में व्याध ने पहले-पहल यहीं पर करुणादेवी के दर्शन किये। वह चित्रांकित मूर्ति की तरह कुछ देर खड़ा रहा। उपगुप्त ने करुणा से परिप्लावित दृष्टि उसके ऊपर निक्षेप की। आँखों ने देखा, हृदय ने हृदय का सन्देश समझ लिया।

व्याध के दोनों हाथ हिले। उसने कन्धे से तूणीर निकाल कर गङ्गा के वक्ष में फेंक दिया—उसकी निर्दयता गङ्गा में डूब गई। अपने बलिष्ट हाथों से धनुष को दो टूक कर, पृथ्वी पर पटक दिया—उसकी कठोरता अन्तिम साँस लेने लगी। इसके बाद व्याध ने भिक्षु के चरणों में गिर कर कहा—"देव! यह मेरी अन्तिम हत्या है!"

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

...गुप्त ने प्रसन्न मुख से आशीर्वाद दिया। व्याध अपने नवीन संसार में प्रवेश करने के लिये चला गया। करुणा उसकी पथ-प्रदर्शिका बनी।

दयार्द्र उपगुप्त ने भूमिशायी सिंह की ओर देखा--उसकी छाती में बुरी तरह से तीर घुसा हुआ था। भिक्षु उसे बड़ी कठिनता से गङ्गा-तट की ओर ले गया, और वहाँ जाकर उसका घाव धोने लगा।

गंगा के चंचल हृदय में दसों दिशाओं में गीति-सुधा की वृष्टि करती हुई एक नाव जा रही थी। शरद् की निर्मल चाँदनी अच्छी तरह से खिल गई थी। वन-प्रान्त और गङ्गा की लहरों में अपूर्व शोभा अङ्कित हो रही थी।

उपगुप्त अपने कार्य में प्रवृत्त हुआ। सिंह के जीवन की आशा बहुत कम थी, किन्तु भिक्षु दत्त-चित्त हुआ, अपना कार्य कर रहा था।

नाव उसी ओर आने लगी। गान के स्वर अब उपगुप्त को स्पष्ट सुनाई देने लगे। उसने देखा—नाव में और कोई नहीं, वही मुक्तकुन्तला रूपसी वासवदत्ता शरच्चन्द्र से आँख लड़ाती हुई गा रही थी।

भिक्षु ने सिंह की छाती का तीर बाहर निकालने को हाथ बढ़ाया, अचानक गान रुक गया। नाव भिक्षु के समीप आ लगी।

नाव में से वासवदत्ता चकित होकर चिल्लाई—"भिक्षु, यह क्या करते हो! क्या तुम्हें मालूम नहीं, जीवन-लाभ कर यह भयङ्कर हिंस्र पशु अपने जीवन-दाता को नहीं पहचान सकेगा?—यह तुम्हारा सर्वनाश कर डालेगा?"

उपगुप्त ने कहा—"रमणी, तुम भूल रही हो। यह उन हिंस्र पशुओं से अधिक भयङ्कर नहीं है, जिनका बाह्य सुन्दर है। यह उस सुन्दर रूप से अधिक भयंकर नहीं है, जिसकी ओट से मनुष्य का शत्रु

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

काम उसका वध करने के लिये कान तक प्रत्यञ्चा खींचे ख... । यह उस सुन्दर मोह से अधिक भयानक नहीं है, जिसने अपने बन्धन से मनुष्य को बन्दी बना रक्खा है। यह हाथ में स्वर्ण-मुकुट लिये हुए छाया के समान निस्सार लोभ-लालसा से अधिक भीषण नहीं है, जिसके पीछे मनुष्य अपने ध्येय-धर्म को भूलकर अनन्त जन्म और जगतों में फिर रहा है।"

वासवदत्ता कुछ न समझ सकी। प्रेम से अधीर होकर उसने कहा—"भिक्षु, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करती रह गई, तुम नहीं आये। क्या भूल गये थे!"

"नहीं, भूला नहीं। मैं आऊँगा, कुछ दिन बाद आऊँगा।"

"आज ही चलो भिक्षु! इससे अधिक सुन्दर अवसर फिर कब आवेगा! आज चन्द्रमा संसार को आलोकित कर रहा है। तुम मेरे गृह का अन्धकार दूर करो।"

"ठहरो।" कहकर भिक्षु धीरे-धीरे सिंह की छाती से तीर निकालने लगा।

वासवदत्ता ने कहा—"तुमने अपने सौन्दर्य के तीर से मुझे आहत किया है, पहले मुझे प्राण-दान दो।"

"धीरज रक्खो सुन्दरी! मैं अवश्य आऊँगा"

"कब आओगे?—जब तुम्हारी प्रतीक्षा करते-करते मेरे नेत्रों की ज्योति चली जायगी? दिन गिनते-गिनते जब समय मुझसे मेरा यौवन छीन लेगा?"

उपगुप्त ने उसकी ओर देखकर सोचा—"हैं, यह क्या! इतना ज्ञान होने पर भी यह गड्ढे में गिर रही है!"

वासवदत्ता ने फिर कहा—"कब आओगे?"

"इसी जीवन में।"

"इसी जीवन में! वह बहुत बड़ी अवधि है।"

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

...ने
...। फिर ?"

"इसी क्षण कहो ?"

"नहीं ।"

"इसी मास ?"

"इसी वर्ष आऊँगा; इसे सत्य समझो ।"

"मैं अपनी अँगुलियों पर दिन और श्वास में क्षण गिनूँगी ।"

वासवदत्ता चली गई। उपगुप्त मृतप्राय सिंह के हृदय से तीर निकालने में प्रवृत्त हुआ।

—३—

शरद् गया, शिशिर गया, हेमन्त गया, किन्तु उपगुप्त नहीं आया। वासवदत्ता ने कई बार अश्रु-पूर्ण प्रतीक्षा की, किन्तु वह नहीं आया। उसने अनेक बार शृंगार किया, सब व्यर्थ हुआ।

सुमन, सुगन्धि और संजीवनी को लेकर अन्त में वसन्त ऋतु आई, फिर भी वह न आया। देखते-देखते अवधि भी बीतने को आई, पर उपगुप्त नहीं आया। वासवदत्ता अतृप्त-अश्रान्त आँखों से उस कभी न आनेवाले को देखती रही। सब आये; जो नहीं आया, वह एक उपगुप्त था!

अवधि के बीतने में दो ही महीने रहे। एक महीना रहा। संसार के पांथ-निवास में ठहरा हुआ पथिक, 'वर्ष' जाने की तैयारी करने लगा। उसने शिशिर का कम्बल कन्धे पर डाल लिया था, हेमन्त का बिस्तर बाँध लिया था, बसन्त के पुष्प-वस्त्र सँभाल लिये थे, ग्रीष्म का छाता हाथ में, जूता पाँव में ले लिया था; वर्षा का रिक्त लोटा और डोर भी ले लिया था, उसने अपनी अन्तिम वस्तु शरद् की चाँदनी को समेटने के लिये हाथ बढ़ाया, त्यों-ही वासवदत्ता ने विकल-होकर कहा—

"क्या सच मेरा प्रियतम इस साल नहीं आवेगा ?"

रात्रि का समय था। समस्त पृथ्वी अन्धकार से डूबी हुई थी।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

वासवदत्ता का महल सहस्रों आलोक-मालाओं से जग[illegible] रहा था। ज्योति की किरण उसके स्वर्णाभूषणों में प्रतिफलित होकर उसके विलास कक्ष को अपूर्व शोभा दे रही थी। असंख्य दीप-तारिकाओं के सुमन थे, जिनके बीच में वासवदत्ता का मुख चन्द्रमा बनकर शोभित था।

उस दिन वासवदत्ता के यहाँ उत्सव था। वह उत्सव उसके प्रेमी एक लक्षपति के स्वागतार्थ रचा गया था। एक ओर से सङ्गीत की, दूसरी ओर से सुरा की धाराएँ बह रही थीं। बीच में अभागा लक्षपति डूबा जा रहा था!

अर्द्धरात्रि के व्यतीत होने से पहले ही लक्षपति सुरा के प्रभाव से पूर्ण अचेत हो गया। उसे अपनी-पराई किसी की सुधि न रही। संगीत बन्द हुआ। दासी परिचारिका-आदि सब बिदा हो गए। कक्ष में लक्षपति और वासवदत्ता के सिवा और कोई नहीं रहा। नहीं, नहीं, एक और पिशाचिनी बैठी हुई थी। वह कौन थी? वेश्या वासवदत्ता की परिछाया।

वासवदत्ता ने चारों ओर देखकर अपने सिरहाने से एक कटार निकाली। रात्रि के समय एक वेश्या के हाथ में कटार! यह क्या करना चाहती है? जो मुखचन्द्र संगीत सुधा की वर्षा करता है, क्या वह वज्र भी गिरा सकता है?

वह उस अचेत लक्षपति का वध करने को बढ़ी। उसका कटार-युक्त हाथ आकाश की ओर उठा, मानों उसने कहा—"सावधान! ऊपर ईश्वर है, उसका भय कर!" पापीयसी उस मूक हाथ के संकेत को न समझ सकी। उसने वह कटार लक्षपति की छाती में भोंक दी। लक्षपति ने चीत्कार छोड़ी। उसके अन्तिम शब्द थे—"हाय! छलनामयी पिशाचिनी!

रूपवती राक्षसी—सुकुमार पिशाचिनी—अपनी विजय पर प्रसन्न

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

हुई ... समय बाहर से किसी ने करुण कण्ठ से पुकारा—"वासवदत्ता !"

कंपित वासवदत्ता ने गवाक्ष-द्वार मुक्त कर, कहा—"कौन ?" उत्तर की आवश्यकता नहीं रही। गवाक्ष-द्वार से कक्ष का आलोक उस व्यक्ति के मुखमण्डल पर पड़ा—वह श्रमण उपगुप्त था।

वासवदत्ता ने हर्ष से कहा—"भिक्षु, तुम आगए ?"

उपगुप्त—"नहीं, किन्तु शीघ्र ही आऊँगा !"

वासवदत्ता—"फिर, इस कुसमय में आने का कारण !"

उपगुप्त—"कुछ नहीं, मैं अपने बिहार को जा रहा था। यहाँ पर मुझे तुम्हारी याद आई। मैं यह जानने को उत्कंठित हुआ कि तुम सो रही हो, या जाग रही हो।"

वासवदत्ता—"मैं जाग रही हूँ।

उपगुप्त—"पर तुम्हारी दोनों आँखें बन्द हैं। अच्छा जाता हूँ, आज मुझे बहुत विलम्ब हो गया है।"

वासवदत्ता—"ठहरो, तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा याद है ?"

उपगुप्त—"हाँ।"

वासवदत्ता—"तुमने इस वर्ष के भीतर ही मुझसे मिलने का वचन दिया है ?"

उपगुप्त—"अभी वर्ष में कितने दिन शेष हैं ?"

वासवदत्ता—"केवल एक पक्ष।"

उपगुप्त—"मैं अवश्य उसके भीतर ही आऊँगा।"

वासवदत्ता—"तुम झूठ बोल रहे हो, मुझसे छल कर रहे हो।"

उपगुप्त—"अमिताभ का शिष्य झूठ नहीं बोलता, छल कपट उसका धर्म नहीं है।"

उपगुप्त रजनी के अन्धकार में मिलकर अदृश्य हो गया। वासवदत्ता गवाक्ष-द्वार बन्द कर, छिप गई।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

—४—

वासवदत्ता ने धन के लिए लक्षपति का वध किया था। भेद खुल गया। वह न्यायालय में विचार के लिए उपस्थित की गई।

उसका धन उसके काम नहीं आया, उसके प्रेमी उसके काम नहीं आये, उसका अनुपम सौन्दर्य भी उसको दण्ड से मुक्त नहीं कर सका।

हतभागिनी को न्यायालय से शूली का दण्ड नहीं मिला। प्राणदण्ड उसके अशान्त जीवन के लिए शान्ति थी। वह दण्ड न था, आशीर्वाद था।

उसका रूप कुरूप किया गया। उसके चन्द्रवदन की आँखें निकाल ली गईं, नाक-कान काट दिये गए, उसके मृणाल-कर छिन्न किये गये, उसकी धन-सम्पत्ति सब छीन ली गई।

जिस समय वासवदत्ता को यह भीषण दण्ड मिला, उस समय उसने बड़े करुण स्वर से प्रार्थना की—"मैं एक सप्ताह का समय चाहती हूँ। मुझे अपने एक प्रेमी से मिलना है। वह इस सप्ताह के भीतर आ जावेगा उसके बाद मैं अत्यन्त प्रसन्नता से घातक के हाथ और न्याय की तलवार को अपनी देह सौंप दूँगी।"

किसी ने उसकी विनय को स्वीकार नहीं किया। घातक ने वासवदत्ता को कुरूप और कुत्सित कर, राज-पथ में छोड़ दिया! एक मनुष्य उसके साथ किया गया, जो उच्च स्वर से समस्त प्रजा को उसके पाप की कथा सुनाता था।

कितना भयानक और वीभत्स दृश्य था? उसके क्षतों से रक्त और पीप बहता था, जिसमें मक्खियाँ भनभना रहीं थीं, हाथों से हीन होने के कारण अभागिनी उनको उड़ा भी नहीं सकती थी। वह करुण शब्दों से केवल रुदन कर रही थी।

आज से पहले जो उसके सौन्दर्य्य के उपासक थे, वे उससे घृणा करने लगे, दूर ही से वह देखकर भाग जाते थे। सब कोई उसके ऊपर

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

थूक[illegible]ते । पथ का एक भिक्षुक, लूला, लगड़ा, कुष्ठ रोगी भी उसके स्पर्श [illegible] बचने का प्रयास कर रहा था ।

जब उसके पास विश्व को आकर्षित करनेवाला रूप नहीं रहा, यौवन नहीं रहा, धन नहीं रहा, जब समस्त संसार उससे घृणा कर रहा था, वह जीव-मात्र की समवेदना से दूर थी, ऐसे दुर्दिन में उपगुप्त ने आकर उसके मस्तक पर अपना हाथ रक्खा ।

वासवदत्ता ने चकित होकर पुकारा—"कौन ?"

उपगुप्त ने उत्तर दिया—"मैं हूँ ।"

वासवदत्ता, कण्ठ-स्वर कुछ पहचान गई । अपना भ्रम मिटाने को उसने पूछा—"कौन, तुम उपगुप्त हो ?"

उपगुप्त—"हाँ मैं उपगुप्त ही हूँ ।"

वासवदत्ता ने दीर्घ श्वास छोड़कर कहा—"लौट जाओ, तुम किस लिये आये, ? क्या तुम मेरा उपहास करने आये हो ?"

उपगुप्त—"तुम मुझसे लौट जाने को कहती हो ! मैं तुम्हारे ही कहने के अनुसार तुम्हारे पास आया हूँ । मेरे आने में बिलम्ब नहीं हुआ है, अभी वर्ष पूरा होने में दो दिन शेष हैं ।"

वासवदत्ता ने निराशा के स्वर में कहा—"हाय ! जब मेरी देह वसन्त की सुरभि से सौरभवती थी, तब तुम न आये । जब मेरी शोभा का चन्द्रमा पृथ्वी के ऊपर सुधा की वृष्टि कर रहा था, तब तुम न आये । जब घातक मेरे यौवन का अन्त करने के लिए प्रस्तर-खण्ड पर अपना शस्त्र तेज कर रहा था, तब भी तुम न आये । भिक्षु, क्या इतने अबोध हो ? मेरे सौन्दर्य्य का दीपक बुझ गया है, मेरी शोभा का सूर्य्य अस्त हो गया है ! ऐसे समय तुम किस लिये आये ?"

उपगुप्त—"भगिनी ! मैं इन्द्रिय-सुख अथवा और किसी स्वार्थ से प्रेरित होकर तुम्हारे पास नहीं आया हूँ । शारीरिक सौन्दर्य व्यर्थ है, तुम्हारा यह शरीर इसकी साक्षी देगा ! धन भी निस्सार है, तुम्हारा

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

अतुल ऐश्वर्य इसका उत्तर देगा। मैं तुम्हारे पास आया हूँ ... तुम्हें क्या कहना है ?"

वासवदत्ता की आँखें खुल गईं। उसने कहा—"मैं क्या कहूँ भिक्षु ! तुम्हारे इस प्रश्न ने मेरे उत्तर को छीन लिया है। मुझे ज्ञात हो रहा है, जैसे मैं एक स्वप्न, एक छाया और एक मरीचिका के पीछे दौड़ रही थी। मुझे कुछ नहीं कहना है। तुम मेरे समीप कुछ देर खड़े रहो। तुम्हारे स्पर्श से मेरी यातना कम हो रही है, तुम्हारे वचनों से मेरा सन्ताप दूर हो रहा है। भिक्षु-श्रेष्ठ, तुम ही कुछ कहो।"

उपगुप्त—'संसार के दुखों की जड़ तृष्णा है, तुम इसी तृष्णा की दासी होकर भटकती रही। तुमने काम के हाथ अपना धर्म बेच दिया, तुमने धन के लिए अपने प्रेमी लक्षपति की हत्या की। आज इस दुःख के समय तुम्हारे काम कोई नहीं आया।"

वासवदत्ता—"हाय ! भिक्षु, तुमने इससे पहले आकर मुझे ठोकर खाने से क्यों नहीं बचाया ? तुम आए, किन्तु बड़ी देर में आए"

उपगुप्त—'कुछ विलम्ब नहीं हुआ है, अभी बहुत समय है। तुम इस समय बाह्य नेत्रों से हीन हो किन्तु तुम्हारे अन्तर-नेत्र खुल गये हैं। उठो, भगवान् बोधिसत्व का हाथ पकड़ो। वे तुम्हारे दुःख दूर करेंगे। तुम्हें मुक्त करेंगे।"

वासवदत्ता के मरु संसार में आकाश-मार्ग से सुधाबिन्दु बरस आया। उसकी सात्त्विक प्रकृति जाग उठी, उसे संसार की क्षण-भंगुरता का बोध हुआ; बोध ही नहीं, अनुभव भी हुआ। उसने भिक्षु के चरणों में अपना मस्तक रखकर कहा—"मैं प्रस्तुत हूँ। मुझे ले जाओ, मेरा अंचल पकड़ कर मुझे शान्ति के राज्य में ले जाओ।"

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

[illegible] ने अपने पवित्र करों से उनका स्पर्श किया। दोनों संघ की ओर चले।

पाप-ताप से विदग्धा वासवदत्ता ने प्रायश्चित्त की सुरसरि में स्नान किया, प्रव्रज्या ग्रहण कर, अपने शेष जीवन में शान्ति पाई।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

जीवन-क्रम

[श्रीमती होमवती]

यह जो दस-बारह साल की लड़की सुबह से रात तक घर-घर चौका बर्तन और झाड़ू-बुहारी का काम यन्त्र के समान करती फिरती है, इसका नाम कल्लो है, बस ।

वास्तव में कल्लो उतनी काली नहीं है; आँख-नाक भी सुघर हैं, पर रंग-ढंग इसके बड़े अजीब हैं । सिर पर जो यह एक-एक बालिश्त लंबे बाल हैं, यह तेल कंघी बिना उलझ-उलझ कर जूना हो गये हैं और अब इन्हें जटा कहने में जरा भी अतिशयोक्ति न होगी । आँखों को प्रायः बड़ी-बड़ी होने पर भी गंदा किये रहती है और मुँह भी चिपकता-सा रहता है । ऐसी ही उसकी वेष-भूषा रहती है । इधर-उधर से जो कपड़े उसे दान स्वरूप सेवा के बदले में मिलते रहते हैं, उनका भी कोई सिलसिला नहीं होता । कहीं से उसे जाड़ों की कड़कड़ाती सर्दी में जाली की फटी चीथड़ा बनियाइन मिल जाती है और किसी घर से अंगारे बरसाती हुई गर्मी में रुई की मैली और बिना बटनों की जाकट प्राप्त हो जाती है । यही उसके अंग ढकने के साधन हैं जिन्हें वह समय-असमय शरीर से लपेटे रहती है ।

जब वह सलवार के ऊपर बनियाइन पहन कर सड़क पर चलती है तो राह चलते हुए पथिक सहसा ठिठक कर उसे सिर से पैर तक देखने लगते हैं और जब वह पतलून के ऊपर रुई की जाकट अथवा जाँघिये के साथ एड़ी तक लम्बा कुरता अथवा फ्राक पहन कर आती है, तब घरों के अन्य नौकर अपने-अपने हाथ का काम छोड़ कर खिलखिला उठते हैं । इस हँसी में घर के मालिक-मालकिन तथा बच्चे भी सहयोग दिये बिना

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

... रहती । पर कल्लो को जैसे किसी से कुछ लेना-देना नहीं, अपने काम से ही काम रहता है उसे तो ।

न हर्ष न शोक, न राज़ी और न नाराज़ी । बल्कि इससे उल्टा यह होता कि जब आस-पास के लोग उस पर व्यंगोक्तियाँ कसते, तो वह और भी जोर-जोर से बर्तन रगड़ना शुरू कर देती, या कपड़ों को और भी धमाधम कूटने लगती । झाड़ू लगाती होती तो चार ही हाथ में सारा आँगन बुहार डालती और कभी पत्थर की शिला के समान बिना किसी बात के भी खड़ी की खड़ी रह जाती, तब क्या मजाल जो कोई उससे एक गिलास पानी भी प्राप्त कर सके, अथवा एक तिनका भी उठवा सके । चाहे धरती चल जाये पर कल्लो टस से मस नहीं हो सकती; न उसे इसकी चिन्ता रहती है कि कब कौन उससे राज़ी है या कौन कब नाराज है । उसे जैसा भाता है, करती है ।

कभी-कभी कल्लो हँसती भी है, उस घर में, जहाँ उसे छाछ मिल जाती है या कभी रोटी पराठे के टुकड़े के साथ गुड़ की डली मिल जाती है; किन्तु उसे रोते किसी ने कभी नहीं देखा । एक दो बार रास्ता चलते लड़के उसे छेड़ने लगते हैं और यहाँ तक कि ईंट-पत्थर से भी उसके ऊपर प्रहार कर बैठते हैं । पर कल्लो बहते हुये खून को चुपचाप पानी से धोकर, मिल गई तो मैली कुचैली कतर लपेट कर, फिर काम में लग जाती है । न किसी की शिकायत से उसे मतलब और न किसी की प्रशंसा से काम ।

वैसे वह काम बहुत करती है । अभी किसी ने कहा : 'कल्लो, पानी लाओ एक गिलास ।' और तभी दूसरा कह उठा : 'पीकदान रख जा री यहाँ ।' इतने में गृहिणी चिल्ला उठी : 'घंटों हो गये चाय पीये, अभी तक बर्तन साफ नहीं कर पाई ।' आदि-आदि वाक्यों की गोलियाँ सी छूटती रहती हैं उसके ऊपर, किन्तु वह ठीक उसी प्रकार डटी रहती है जैसे कोई चट्टान हो; यहाँ तक कि वह किसी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

की ओर देखती भी नहीं। कभी-कभी उसकी यह बात बहु...
लगती है। कारण, जब कोई उससे पानी, पान या कोई चीज़ मांगता
है, तब वह अक्सर मुँह दूसरी तरफ फेर कर वह वस्तु पकड़ा देगी, उसे
इस बात से कोई मतलब नहीं कि लेने वाले ने गिलास ठीक से पकड़ लिया
या नहीं। पानों की तश्तरी थाम ली या नहीं। चाहे उसकी तरफ़ से फ़र्श
ख़राब हो या किसी के कपड़े, अथवा सोने का बिस्तर, किन्तु हमेशा
वह मुँह दूसरी तरफ करके चीज पकड़ायेगी। लेने वाला यदि सावधान
नहीं होगा तो अवश्य ही कोई दुर्घटना हुए बिना न रहेगी।

कल्लो को कोई चिन्ता नहीं। कोई डाँटता है तो डाँटे, झिड़कता
है तो झिड़कता रहे, वह चल देगी मुँह फेर कर। इसलिये और लोग
ही सावधान रहने के आदी हो गये हैं। क्या करें मँहगी का ज़माना
और नौकरों का अकाल, कैसे भी हो दिन तो कटें। फिर कल्लो जैसी
नौकर, सस्ती और हर काम करने को तैयार, थोड़ी ढीठ है तो क्या
हुआ, काम तो करती ही है।

मानो कोई त्योहार आ गया, तो घर की लड़कियाँ उसे ज़रा सी
मेंहदी लगाने को दे देंगी, या दो चार पुरानी उतरी हुई चूड़ियाँ थमा
देंगी, और कल्लो इसी लालच में बहुत सी मेंहदी खूब रगड़-रगड़ कर
पीस देगी। दो कचौरियों के लालच में खूब दाल पीस देगी और फिर
भी अगर कोई न देगा तो नाराज नहीं होगी। कभी-कभी उसे बासी
और सूखे हुए पाव का टुकड़ा मिल जाये तो कितने ही पान जरूरत
बिना ही लगाकर डाल देगी और यदि उसका मन न होगा तो उसके
जिम्मे जो बर्तन मलाने आदि का काम है, उसे भी उल्टा-पुल्टा करके,
चुपके से आँखों में धूल झोंक कर भाग जायेगी। फिर दूसरे, तीसरे,
चौथे और पाँचवें घर यही सिलसिला।

इसीलिये सुबह छः बजे से लेकर रात के दस बजे तक कल्लो मशीन
की तरह घूमती रहती है—पता नहीं वह थकती है या नहीं। बीमार

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

...ुप्त

...होती ही नहीं। या उसकी बीमारी का किसी को पता कहीं नहीं चलता, क्योंकि वह नागा कभी नहीं करती। मान लो कि कभी उसके पेट या सिर में दर्द है तो इससे क्या? काम उसे करना है, करेगी। वह जो बुढ़िया हर महिने इसका वेतन इकट्ठा करने के लिये दूसरी-तीसरी तारीख को घर-घर झाँक आती है, उसे किसी बात से कोई मतलब नहीं। उल्टी दो-चार शिकायतें सुनकर कल्लो ही को डाँट जाती है, 'काम ठीक से करा कर, तेरी काया तो चलती ही नहीं, रात भर घुर्र-घुर्र करके सोती है, फिर दिन में काम क्यों नहीं होता?' इत्यादि, इत्यादि।

वेतन प्राप्ति के समय बुढ़िया एक बात का और भी ध्यान करती है। उस दिन यदि उसके माँगने पर किसी ने दाल नहीं दी, खिचड़ी के लिये चावलों को मना कर दिया अथवा धोती या जम्फर माँगने पर कह दिया कि 'इस समय है नहीं।' तो बुढ़िया इस अवज्ञा की पूर्ति कल्लो के द्वारा कराने में नहीं चूकेगी। वह चुपके से पेड़ की आड़ में खड़े होकर या दीवार के पीछे छिप कर कह देगी कल्लो से कि 'इनके घर बहुत देर मत लगाया कर, रात को घर जल्दी लौटा कर।' और तब कल्लो दो-चार दिन उक्त परिवार को खूब तंग करने की चेष्टा करती रहेगी, परन्तु उसे दादी से क्या मिलता है? और मालिकों से क्या? इसका निर्णय स्वयं करके पुनः ठीक हो जाती है। जैसे उसके लेखे सब व्यर्थ हो गया, दादी का कहना मानना भी और मालिक की उपेक्षा करना भी।

बहुत तंग आकर जब कोई कह देता है कि 'हम, बुढ़िया, अब इतनी लापरवाही बरदाश्त नहीं कर सकते, दूसरा इन्तजाम करेंगे....।' तब बुढ़िया सचेत होकर एक दो बार स्वयं भी चक्कर लगा जाती है, पर उसकी नित नई फ़रमाइशें लोगों को इतना तंग कर देती हैं कि खुद कह देना पड़ता है: 'बुढ़िया तू क्यों हैरान होती है।' लेकिन

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi